ओ३म्

महिला सत्यार्थ प्रकाश

महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश का महिलाओं के लिये सरल संस्करण

लेखक

विश्वप्रकाश बी० ए०, एल० एल० बी०

[सम्पादक चमचम, कहानीमाला, प्रणेता छत्रपति शिवाजी, हृदय के आँसू, विधवाओं का इंसाफ, स्त्रियों के रिश्ते, श्रीमद्भगवद्गीता, महात्मा नारायण स्वामी का जीवन चरित्र, Life & Teachings of Swami Dayanand, दिव्य प्रभा, नील नागिनी, सुहाग का सिन्दूर, गुलगुल आदि आदि]

प्रकाशक

कला प्रेस, इलाहाबाद

[मूल्य ।।।)

ग्रन्थ के विषय में

"ऋषि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश मूल युग प्रवर्त्तक रत्नग्रन्थ कालेज के कुमार विद्यार्थियों तथा उच्चकोटि की विदुषी देवियों के लिये परम उपयोगी रत्न ग्रन्थ हिन्दी भाषा का है इसको कौन नहीं जानता ?

साधारण कोटि के बालक तथा कुमारों के लिए दो बाल सत्यार्थ प्रकाश प्रकाशित हो चुके हैं जो उनके लिये भारी उपयोगी सिद्ध हुये है। पर आज तक कुमारियों तथा साधारण कोटि की देवियों के लिये जो स्वयं पंडिता नहीं वह ग्रन्थ पूर्ण काम नहीं दे सकता था। इसलिये जरूरत थी कि महिला जगत के लिये एक सरल कथासार रूपी रोचक सत्यार्थ प्रकाश तैयार किया जावे जो कुमारियों तथा साधारण देवियों की पाठशालाओं के अतिरिक्त स्त्री समाज के अधिवेशनों में भी कथा का काम दे सके।

हमें यह देखकर परम हर्ष होता है कि श्री पं० विश्वप्रकाश जी बी० ए० एल० एल० बी० सम्पादक वेदोदय प्रयाग ने "महिला सत्यार्थ प्रकाश" नामी स्त्री तथा कुमारी जगत के लिये परम सरल, परम उपयोगी तथा परम मनोरंजक रूप से रत्न सार रूपी उक्त हिन्दी पुस्तक बड़ी योग्यता से तैयार कर प्रकाशित की है। अतः इसके कर्त्ता मंगलवाद के योग्य हैं।"

निवेदक

आत्माराम अमृतसरी

राज्य रत्न

भूमिका

ऋषि दयानन्द एक नवीन युग के विधाता थे। उनका अमूल्य ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश है, जिसमे उन्होंने वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति, वैदिक आचार विचार का बडी उत्तमता से प्रतिपादन किया है। मूल पुस्तक बहुत बडी है। उसके अध्ययन के लिये धैर्य और योग्यता की आवश्यकता है।

इस पुस्तक के कई बाल संस्करण निकल चुके थे। परन्तु महिलाओं के लिये कोई संस्करण नहीं निकला था। मेरे मित्र श्रीरामेश्वर प्रसाद जी रजिस्ट्रार महिला विद्यापीठ के विशेष अनुरोध से यह पुस्तक लिखी गई है। जिस प्रकार बाल सत्यार्थ प्रकाश में ऐसी सामग्री का विस्तृत वर्णन है जो कि बालकों के लिये आवश्यक है, इसी प्रकार इस पुस्तक में महिलाओं सम्बन्धी सभी बातों का वर्णन किया गया है।

मूल सत्यार्थ प्रकाश आर्य्य कन्या पाठशालाओं में नहीं पढ़ाया जा सकता था, परन्तु इस छोटी सी पुस्तक को आर्य्य कन्या पाठशालाओं में बडी सरलता से पढाया जा सकता है।

मुझे आशा है कि इस पुस्तक के द्वारा ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों का अधिक प्रचार हो सकेगा।

—विश्वप्रकाश

दूसरा संस्करण

प्रसन्नता की बात है कि इसका दूसरा संस्करण निकालना पड़ा। इसमें पुस्तक संशोधित कर दी गई है।

कला प्रेस,
प्रयाग।

— विश्वप्रकाश

विषय-सूची

प्रथम समुल्लास

(१) ईश्वर के नाम

ईश्वर के अनेक नाम

बहिनो ! इस जगत में जिधर देखो उधर ही ईश्वर की कारीगरी दिखाई पड़ती है। बड़े बड़े पर्वत, आकाश की सुन्दरता सूर्य की ज्योति, चन्द्र की ज्योत्स्ना, तारों का टिमटिमाना, तितली का चित्ताकर्षक स्वरूप, फूलों की कमनीयता, पक्षियों का कलरव आदि आदि सभी ईश्वर की महिमा को दर्शा रहे हैं।

उस परमेश्वर का क्या नाम है ? उसको हम किस नाम से पुकारें ? उसके अनन्त गुण हैं और एक एक गुण को लेकर हम उसका सम्बोधन कर सकते हैं। तुम्हारा पालन पोषण तुम्हारी माँ ने किया है। तुम्हारी रक्षा तुम्हारे पिता ने की है। तुम्हारी सखियों ने तुमसे प्रेम भाव प्रकट किया है। यदि यही गुण अन्य किसी में मिल जावें तो क्या तुम उसको इन्हीं सम्बन्धों से सम्बोधित न करोगी ? कोई वृद्ध स्त्री जो तुम्हारे साथ प्रेम का व्यवहार करती है, तुमको शिक्षा देती है, तो विना प्रयत्न किये हुये तुम्हारे मुँह से उसके लिये माता शब्द निकल पड़ता है। इसी प्रकार जब कोई मनुष्य आपत्ति में तुम्हें सहायता दे देता है तो तुम उसको भाई मान लेती हो। उस परम प्रभु को देखो उस दयालु परमात्मा के गुणों पर विचार करो, वह किस-किस प्रकार से और किस-किस भाव से तुम्हारी सहायता कर रहा है। जिस जिस भाव से वह तुम्हारी सहायता करता है उस उस भाव से तुम उसका नाम लेती हो। इससे तुमको यह मालूम हो गया होगा कि ईश्वर का एक नाम नहीं बहुत से नाम हैं।

ईश्वर का मुख्य नाम

वेदों और वैदिक साहित्य में जहाँ परमात्मा के अनेकों नाम आये हैं वहां 'ओ३म्' नाम विशेष रूप से आया है और इस नाम की महत्ता विशेष रूप से गाई गई है। जैसे-यजुर्वेद अध्याय ४० मंत्र १७ में आया है।

'ओ३म् खम्ब्रह्म'

इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद में आया है।

'ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत'

माण्डूक्य उपनिषद [मं० १] में आया है:—

'ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानम् ।'

यह ओ३म् शब्द तीन अक्षरों से मिलकर बना है—अ, उ, म। इन तीनों अक्षरों से परमात्मा के अनेक नामों का बोध होता है। जैसे अकार से विराट, अग्नि और विश्वादि, उकार से हिरण्यगर्भः वायु और तैजसादि, मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि।

वेद आदि ग्रंथों में जहाँ पर यह नाम आये हैं वहाँ पर प्रकरण के हिसाब से ईश्वर ही अर्थ किया गया है। और ऐसा ही होना भी चाहिये क्योंकि जो जो गुण इन नामों से प्रकट होते हैं वे सब ईश्वर में ही हैं। कुछ लोगों ने वेदों के सच्चे अर्थों को न समझ कर इनके भिन्न भिन्न अर्थ कर लिये हैं और भिन्न भिन्न देवी देवताओं की कल्पना भी करली है। इसलिये यह आवश्यक है कि प्रकरण को अच्छी प्रकार समझ कर वेदों का अर्थ करना चाहिये। जिस प्रकार स्वामी शब्द के एक अर्थ नहीं होते, एक देवी अपने पति को स्वामी कहकर सम्बोधित कर सकती है और ईश्वर को भी जगत का स्वामी समझ कर स्वामी नाम से पुकार सकती है। इसलिये यह जानने के लिये कि स्वामी शब्द के क्या अर्थ हैं यह जान लेना बहुत ही आवश्यक है कि उस देवी ने स्वामी शब्द किसके लिये प्रयोग किया है। यदि वह शब्द पति के लिये प्रयोग किया गया है तो उसका अर्थ पति ही लेना चाहिये

और यदि देवी ने ईश्वर को स्वामी शब्द से स्मरण किया तो उसका अर्थ ईश्वर ही लेना चाहिये।

कुछ नाम

यह कहा जा चुका है कि परमात्मा के अनेकों नाम है। परमात्मा को 'विराट्' इसलिये कहते है कि वह जगत को बहुत प्रकार से प्रकाशित करता है। परमात्मा ज्ञान स्वरूप, सर्वज्ञ, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है इसलिये उसको 'अग्नि' कहते है। परमात्मा अखिल ऐश्वर्य युक्त है इस लिये उसको 'इन्द्र' कहते है। परमेश्वर जगत का विस्तार करने वाला है इसलिये उसको 'पृथ्वी' कहते है। वह मगल स्वरूप या सब जीवों के मगल का कारण है इसलिये उसको 'मगल' कहते है। वह विविध विज्ञान का भण्डार है इसलिये उसको 'सरस्वती' कहते है। वह कल्याण करने वाला है इसलिये उसको 'शिव' कहते है। इससे तुमको पता लग गया होगा कि परमात्मा के जितने नाम है वह सब ईश्वर का गुण गान करते है।

(२) मंगलाचरण

प्रश्न—मगलाचरण किसी ग्रथ के आरम्भ, मध्य और अन्त मे करने की परिपाटी है। इस विषय मे क्या करना चाहिये ?

उत्तर—मगलाचरण करने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि एक स्थान पर मगल हो तो क्या अन्य स्थान पर अमंगल है। लोगो ने अज्ञान से भिन्न भिन्न प्रकार के मगलाचरण रच लिये है जैसे, श्री 'गणेशायनमः,' 'सीता रामाभ्याम् नमः' 'राधाकृष्णाभ्याम् नमः' 'हनुमते नमः'। वेद और वैदिक ग्रथो मे इस प्रकार के मगलाचरण नही पाये जाते। यह प्रथा बिलकुल नवीन है जो बाद के लोगो ने चलाई है। यदि मगलाचरण की आवश्यकता ही पड जाय तो 'ओ३म् या' अथ् शब्दो से मगलाचरण करना चाहिये। जैसा कि पूर्व मीमासा के बनाने वाले ऋषि ने किया है—

'अथातो धर्म जिज्ञासा'

दूसरा समुल्लास

शिक्षा का वर्णन

तीन गुरु

शत्पथ ब्राह्मण में एक स्थान पर आया है—

'मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषोवेद।'

अर्थात् जब (१) माता (२) पिता और (३) गुरु विद्वान् तथा सदाचारी होता है तो उसकी संतान ज्ञानवान और सदाचारी होती है इससे पूर्व नहीं। इसलिये यह आवश्यक है कि माता, पिता तथा गुरु बडे सदाचारी हों।

माता

इस वाक्य मे माता की गणना सबसे पहिले की गई है और वास्तव में यह ठीक भी है। बच्चे का लालन पालन सबसे पहिले माता ही करती है। जो गुण माता मे होते है वह सब बालक मे भी आ जाते है।

प्राचीनकाल मे माता की सुशिक्षा का पूर्ण रूप से प्रबंध रहता था। माताओं के बच्चों को लालन पालन की शिक्षा दी जाती थी परन्तु अज्ञान के फैलने के कारण यह शिक्षा व्यर्थ समझी जाने लगी और इसी का फल यह हुआ कि हमारी संतान दिन बदिन निर्बल और दुराचारी होने लगी। प्राचीनकाल की वीर और विदुषी स्त्रियाँ अपनी संतान को वीर तथा सदाचारी बनाया करती थी परन्तु हम लोगों का बहुत बडा पतन हो गया है।

बच्चे का पालन

बच्चे की शिक्षा और लालन पालन गर्भ के समय से आरम्भ हो जाता है। उसी समय से माता को चाहिये कि ऐसे पदार्थों का सेवन करे जिनसे शांति, आरोग्यता, बल, बुद्धि और पराक्रम बढ़े। ऐसे पदार्थ घी, दूध, पकवान और फलादि हैं। उसको चाहिये कि अपने हृदय में किसी प्रकार के कुसंस्कार न उठने देवे और न किसी प्रकार का शोक ही करे, क्योंकि ऐसा करने से संतान पर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

जब बालक का जन्म होवे तो उसको सुगंधित जल से नाड़ी छेदन आदि करके स्नान करावे और सुगंधित पदार्थों से जात-कर्म* संस्कार करे। इस समय बालक के लालन पालन में अच्छी प्रकार ध्यान रक्खे और उसके दूध आदि का अच्छी प्रकार से प्रबंध करे। जब बालक बड़ा होने लगे तो उसको बुरे बालकों की संगति से बचावे क्योंकि जो संस्कार या बुरी आदतें बचपन में पड़ जाती हैं उनसे बड़े होने पर छुटकारा नहीं मिलता।

जब बालक बोलने लगे तो उसके उच्चारण पर विशेष ध्यान देना चाहिये। जो अक्षर जिस स्थान से बोला जाना चाहिये उसी स्थान से बोला जाय जैसे 'प' दोनों ओठों को मिलाकर बोला जाता है इसी प्रकार बोला जावे। बच्चे दूसरे से लड़ना और बुरी बातें न सीखने पावें। वे सदा प्रसन्न रहें, सच बोलें, बड़ों की आज्ञा मानते रहें। बच्चों को जब वे बड़े हो जायें तो नागरी भाषा सिखलाई जावे और नागरी सीखने के बाद अन्य देशीय भाषाएँ भी सिखाई जा सकती हैं परन्तु ऐसा न हो कि वे नागरी भाषा को छोड़कर अन्य भाषा ही पढ़ें।

बच्चों को एक दूसरे के साथ व्यवहार करने की शिक्षा भी देनी चाहिये। बालक अपने भाई बहनों के साथ प्रेम-पूर्वक बोलें, जब बड़ों के सामने जावें

---

*इसकी विधि ऋषि दयानन्दकृत 'संस्कार विधि' में दी हुई है।

करने पाये ।

भूत प्रेत

भारतवर्ष मे इस समय अज्ञान के कारण भूत-प्रेत की बहुत चर्चा सुनाई पड़ती है । माताएँ बच्चो को डराने के लिये भूत प्रेत का नाम लिया करती है और बच्चे उनका नाम सुनकर डर जाते है । बच्चे बीमार पडते है तो माताएँ समझती है कि उनको भूत प्रेत ने आ घेरा, वे डाक्टरो या वैद्यों के पास जाकर दवा नहीं माँगती इधर-उधर धूर्तों के पास जाकर भूत प्रेत को दूर कराने का यत्न करती हैं । ससार मे कुछ पाखडी लोगो ने अपनी जीविका के लिये भूत प्रेत के विचार जनता मे फैला दिये है । और अज्ञान वश हमारी माताएँ अपने बच्चो को इनके पास ले जाती है और पूछती है 'महाराज इस लडका और लडकी, स्त्री पुरुष को न जाने क्या हो गया ।' तब ये धूर्त लोग कहते है—"इसके शरीर मे बड़ा भूत प्रेत भैरव, शीतला आदि देवी आ गई है । अगर तुम उपाय न करोगे तो ये बिना प्राण लिये न मानेगी ।" इसको सुनकर माताएँ कहती है "जितना रुपया तुम माँगो हम देंगी किसी प्रकार बचाओ ।" पाखडी लोग यह समझ कर कि उनकी धाक जम गई मनमाना रुपया वसूल करते है । इस प्रकार माताएँ बहुत सा रुपया नष्ट कर देती है और वैद्यो की दवा नहीं करती । यह सब इसलिये है कि उन्होंने भूत प्रेत के अर्थों को नहीं समझा । मनुस्मृति अध्याय पाँच श्लोक ६५ मे आया है ।

'गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति ॥'

जब गुरु मर जाय तो उसका शरीर 'प्रेत' कहलाता और दाह सस्कार करने वाला 'प्रेतहार' कहलाता है । जब शरीर जलकर भस्म हो जाता है तो

उसको 'भूत' कहते है। भूत का अर्थ है जो बीत गया हो, जो इस समय न हो? तुम्हारे माता पिता या बाबा दादी यदि इस ससार से चले गये है तो वह 'भूत' ही है। यह समझना कि 'भूत' हमको किसी प्रकार की हानि पहुँचा सकते है अज्ञानियों की मन गढ़त बात है। जीव जब शरीर को छोड़ता है तो अपने गुण कर्मों के अनुसार या तो मुक्ति पाता है या दूसरा शरीर धारण करता है। उसको इतनी छुट्टी नहीं कि किसी बालक या बालिका पर अपनी लीला फैलाये। पाखण्डियों ने धन कमाने के लालच से इस प्रकार की बाते रच ली है।

ज्योतिषियों की लीला

जब किसी प्राणी पर किसी प्रकार का दु:ख आ पड़ता है तो ज्योतिषी कहते है कि इसके ग्रह खराब है, इसपर शर्यादि क्रूर ग्रह चढ़े है। माताएँ अपने बच्चों को इन ज्योतिषियों के पास लेकर घूमती फिरती है और ज्योतिषी इनको ठगते रहते है। इन ज्योतिषियों से पूछना चाहिये कि ग्रह क्या चीज है और बालकों पर इनका क्या प्रभाव पड़ता है? पृथ्वी, सूरज, चाँद और तारे सब ग्रह कहलाते है। यह सब जड़ है और ईश्वरीय नियम के सहारे चक्कर काट रहे है। वे स्वय अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं कर सकते, इसलिये वे हमपर कोई प्रभाव नही डाल सकते। ससार मे जो सुख दुख है वह अपने कर्मों के अनुसार मिलता है। उसको ग्रहों के मत्थे डालना उचित नही। जब बच्चा पैदा होता है तब माता पिता बच्चे का जन्म पत्र बनवाते है। ज्योतिषी जब जन्मपत्र बनाकर लाता है तो माता पिता पूछते है—'महाराज! इसके ग्रह कैसे है'? ज्योतिषी उत्तर देता है, "इस बालक के ग्रह बड़े अच्छे है। यह बड़ा सुखी और धनी होगा।" माता पिता बड़े प्रसन्न हो जाते है। ज्योतिषी समझता है कि इस प्रकार काम नही चलेगा और न वह धन ही ऐंठ सकेगा इसलिए वह कहता है। "एक ग्रह बहुत खराब है, आठ वर्ष की अवस्था मे इसकी मृत्यु हो जायगी।" अब तो माता पिता बड़े चिन्तित

होते है। माता पूछती है "पंडित जी हम क्या करें?" वे उत्तर देते है "उपाय करो।" वे पूछती है क्या उपाय किया जाय।" कहते है कि मन्त्र जाप कराओ। ब्राह्मणों को भोजन दो इस प्रकार शायद टल जाय। इस प्रकार भोली माताएँ इन पाखण्डियो के हाथ ठगी जाती है।

प्रश्न—तो क्या यह ज्योतिष शास्त्र झूठा है? यह तो शास्त्र है न?

उत्तर—देवी जी! ज्योतिष शास्त्र झूठा नहीं। ज्योतिष से यह विदित होता है कि इस समय अमुक ग्रह कहाँ है और अमुक ग्रह कहाँ है। यही ज्योतिष शास्त्र बता सकता है। परन्तु पंडितों ने धन कमाने के लालच से ग्रहो के फल निकाल लिये हैं। आप समझ चुकी होगी कि ग्रह जड होने के कारण हम पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते इसलिये यह फल निकालने की ज्योतिष मिथ्या है।

प्रश्न—तो क्या ये मन्त्र, डोरा आदि बाँधना सब व्यर्थ है?

उत्तर—हाँ देवी जी! ऐसी ही बात है। डोरा या तावीज मे कुछ नहीं होता। न उनके देने वाले कुछ जानते ही है। इनके बाँधने से बच्चो पर कोई प्रभाव नही पडता। यदि आप अच्छे कर्म करेंगी तो उसका फल अच्छा होगा, यदि बुरा करेंगी तो दु:ख मे फँसेगी। आप यह नही समझतीं कि कर्मो के फल तो मिलेंगे ही। आप हजार यत्न क्यों न करें वे टल नहीं सकते। यही ईश्वरीय नियम है। आप पाखंडी, दुराचारी, अज्ञानी की बातों पर विश्वास कर लेती है और उसी विश्वास के कारण अपना धर्म और धन गवाँती फिरती है।

पिता की शिक्षा

प्रश्न—माता बच्चे की शिक्षा किस समय तक करे?

उत्तर—जन्म से पाँच वर्ष तक। जब बालक छः वर्ष का हो जाय तो पिता को चाहिये कि उसकी शिक्षा अपने हाथ मे ले ले। बच्चे के साथ विशेष लाड प्यार न करे क्योंकि इससे बच्चे बिगड जाते है परन्तु बिना

कारण मारना भी उचित नहीं है। आरम्भ ही से बच्चों में अच्छी आदत डालनी चाहिये क्योंकि जो आदतें इस समय पड़ जाती हैं वे आगे चलने पर छूटती नहीं, जैसे यदि कोई बालक गलती से किसी दूसरे की वस्तु उठा लावे तो उसको वहीं पर रोकना चाहिये। ऐसा न करने से बालक में चोरी करने की आदत पड़ जाती है। यदि बालक झूठ बोले तो उसको भी रोकना चाहिये। ऐसा न करने से उसकी झूठ बोलने की आदत पड़ जाती है एक दूसरे के साथ व्यवहार करने की विधि भी सिखानी चाहिये। जब बालक आठ वर्ष का हो जाय तो उसको गुरु की सेवा में भेज देना चाहिये।

जो माता पिता अपने बालक को शिक्षा नहीं देते वे उनके वैरी हैं।

तीसरा समुल्लास

पढ़ने और पढ़ाने की विधि

सच्चा आभूषण

जब बालक आठ वर्ष का हो जाय तो माता पिता का कर्त्तव्य है कि, उसको पाठशाला मे भेज दे। बच्चो का सच्चा आभूषण विद्या ही है। माताओ को चाहिये कि उस आभूषण से अपने बालक और बालिकाओ को सजाये। सोने और चाँदी के आभूषण से किसी की शोभा नहीं बढ़ती। प्राय: यह देखा जाता है कि बालक और बालिकाओ को गहने के लालच से दुष्ट लोग बहका ले जाते है और कभी कभी उनको जान से भी मार डालते है। इससे बालक-बालिकाओ को कभी आभूषण नही पहनाने चाहियें।

पाठशालायें

कन्याओ की पाठशाला और बालको की पाठशाला अलग अलग होनी चाहिये। बालक को बालको की पाठशाला मे और कन्या को कन्या की पाठशाला मे भेज देना चाहिये। बालक और कन्या की पाठशालाएँ जहाँ तक हो सके दूर ही रहे। बालक कन्याओ के साथ न खेल सकें। इसी प्रकार कन्याएँ भी बालको के साथ न खेले। इस प्रकार एकान्त मे रह कर बालक और बालिकाएँ अपने धर्म का पालन कर अपना अध्ययन करें।

गायत्री मंत्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।

यजु० अ० ३६ [मं० ३]

(ओ३म्) इसका अर्थ पहिले समुल्लास में दिया जा चुका है (भूः) सब जगत का आधार और प्राणों से प्यारा (भुवः) दुःख से रहित (स्वः) सब जगत को व्यापक होकर धारण करने वाला (सवितुः) जो सब जगत को उत्पन्न करने वाला और ऐश्वर्य का देने वाला (देवस्य) जो सब सुखों का देने वाला और जिसकी प्राप्ति की कामना सब करते हैं । (वरेण्य) स्वीकार करने योग्य (भर्गः) शुद्ध स्वरूप (तत्) उस परमात्मा को (धीमहि) धारण करें । किस प्रयोजन के लिये (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे (अर्थात् बुरे कामों से छुड़ा कर अच्छे कामों में लगावे) ।

बालक बालिकाओं को गायत्री मंत्र और इसका अर्थ कण्ठस्थ करा दे ।

शुद्धि

मनुस्मृति में अध्याय ५ श्लोक १०९ पर आया है ।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥

जल से शरीर के अङ्ग शुद्ध होते हैं और मन सत्य से शुद्ध होता है । विद्या और तप से जीवात्मा पवित्र होता है और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है ।

इसलिये माताओं का कर्त्तव्य है कि सब प्रकार की शुद्धि बालकों को करावें और उनको यथोचित शिक्षा देते रहें ।

प्राणायाम

हमारे शरीर में प्राण रहता है। नासिका से हम बराबर श्वास लिया करते है। कोई क्षण ऐसा नही जाता जब कि हम श्वास न लेते हो। प्राणायाम मे इसी श्वास को रोकना होता है। यह कई प्रकार का होता है।

१—बाह्य विषय—इसमे श्वास बाहर रोका जाता है और अभ्यास डाला जाता है कि बाहर अधिक से अधिक कितनी देर तक रोका जा सकता है।

२—आभ्यान्तर—इसमे श्वास अन्दर रोका जाता है, जितना रोका जा सके रोका जाय।

३—स्तम्भ वृत्ति—इसमे जहाँ चाह वहीं श्वास रोक लिया जाय।

४—बाह्याभ्यन्तराक्षेपी—इसमे जब प्राण बाहर निकलने लगे तब उसको अन्दर की ओर खीचे और जब अन्दर जाने लगे तब बाहर की ओर निकाल लेवे।

इस क्रिया से स्त्री पुरुष जितेन्द्रिय, पराक्रमी और बलवान होते है।

सन्ध्या-अग्निहोत्र

सध्या और अग्निहोत्र करने के लिये किसी ऐसे स्थान पर चला जावे जो बहुत शात हो। यदि नदी का किनारा या प्राकृतिक शोभा हो तो बहुत अच्छा है क्योकि ऐसे स्थान पर चित्त बहुत एकाग्र हो जाता है। प्रातः और सायंकाल दोनों समय सध्या और अग्निहोत्र करना चाहिये। अग्निहोत्र सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पहले कर लेना चाहिये। सध्या और अग्निहोत्र की विधि विस्तारपूर्वक ऋषि दयानन्द कृत पञ्च-यज्ञ महाविधि में वर्णित है। वहाँ से उसको देखना चाहिये।

प्रश्न—होम करने से क्या लाभ होगा?

उत्तर—यह सब लोग जानते है कि दुर्गंधयुक्त वायु और जल से

प्राणी बीमार पड जाते है, प्रति क्षण हमारे शरीर से दूषित वायु निकला करती है जिससे वायु मडल खराब हो जाता है। इसलिये उसको शुद्ध करने के लिये कोई न कोई विधि की आवश्यकता पडती है, और वह विधि होम करना ही है। इसमे सुगन्धित पदार्थ अग्नि मे डाले जाते है और वह पदार्थ अग्नि मे जलकर वायु को शुद्ध करते है। वायु शुद्ध होकर हमारे शरीर मे प्रवेश करती है और हमको स्वस्थ बनाती है। जो मनुष्य घी और सुगन्धित पदार्थों को अग्नि मे न डाल कर स्वय खा लेते है, वे बडे स्वार्थी होते है, वे दूसरो का कल्याण नही करते किन्तु जो सज्जन अग्नि मे इन चीजों को अर्पण करते है, वे सब प्राणियो के हित करने वाले होते है। क्योंकि यह सुगन्धित पदार्थ अग्नि मे जलकर अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है, और सूक्ष्म हो करके सारे ब्रह्माण्ड को पवित्र करता है। प्रत्येक को चाहिये कि सोलह आहुतियाँ अवश्य होम करे और प्रत्येक आहुति छः छः माशे की होनी चाहिये। जो धनवान या राजा रानी हो वे और भी अधिक यज्ञ कर सकती है। प्राचीनकाल मे बडे बडे यज्ञ हुआ करते थे, परन्तु इस प्रथा के उठ जाने से देश में नई-नई बीमारियाँ नित्य प्रति हुआ करती है।

ब्रह्मचर्य

स्त्री और पुरुष दोनो के लिये ही ब्रह्मचर्य का विधान है। शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिये ब्रह्मचर्य की रक्षा बहुत आवश्यक है। ब्रह्मचर्य कई प्रकार का होता है। (१) कनिष्ठ, (२) मध्यम, और (३) उत्तम। कनिष्ठ ब्रह्मचर्य स्त्री के लिये कम से कम सोलह वर्ष का है उस समय तक स्त्री को अवश्य ही ब्रह्मचारिणी रहना चाहिये। उत्तम ब्रह्मचर्य चौबीस वर्ष की अवस्था तक है। इस समय के बाद उन स्त्रियो को जो गृहस्थ आश्रम धारण करना चाहती है ब्रह्मचर्य नही रखना चाहिये, यदि कोई स्त्री जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारिणी रहना चाहे तो कोई हानि नही है। वह जीवन भर ब्रह्मचारिणी रह सकती है।

स्त्री और पुरुष दोनों के ब्रह्मचर्य के लिये भिन्न-भिन्न नियम दिये हुये हैं। यदि पुरुष पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहता है तो उसकी स्त्री कम से कम सोलह वर्ष तक ब्रह्मचारिणी रहे, यदि पुरुष तीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहे तो स्त्री सत्रह वर्ष तक, यदि पुरुष छत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहे तो स्त्री अठारह वर्ष तक, यदि पुरुष चालीस वर्ष रहे तो स्त्री बीस वर्ष तक, यदि पुरुष अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहे तो स्त्री चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहे। इस नियम से स्त्री और पुरुष समान जितेन्द्रिय और शक्तिशाली हो सकते हैं और अध्ययन में भी उनका मन एकाग्र हो सकता है।

यम

यम पाँच प्रकार के होते हैं।

१—अहिंसा—किसी प्राणी को दुःख न देना।

२—सत्य—सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना।

३—अस्तेय—मन, वचन, कर्म से किसी भी प्रकार से चोरी न करना।

४—ब्रह्मचर्य—इन्द्रियों को समय में रखना।

५—अपरिग्रह—अत्यन्त लोलुपता तथा अभिमान से रहित होना।

नियम

नियम भी पांच प्रकार के होते हैं।

१—शौच—शरीर को स्नान आदि से पवित्र करना।

२—संतोष—जितना पुरुषार्थ हो सके उतना पुरुषार्थ करना और हानि लाभ में हर्ष व दुख न करना।

४—स्वाध्याय—पढ़ना, पढ़ाना।

५—ईश्वर प्राणिधान—ईश्वर की भक्ति विशेष रूप से अपनी आत्मा को समर्पित करके करना।

यम और नियम दोनों ही का पालन बहुत ही आवश्यक है।

धर्म अधर्म की परीक्षा

किसी बात को यह जानने के लिये कि वह उचित है या अनुचित परीक्षा की आवश्यकता होती है। स्त्री और पुरुष दोनों का कर्त्तव्य है कि प्रत्येक बात को भली प्रकार विचार करके करे। परीक्षा पाँच प्रकार से हो सकती हैं :—

१—जो जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों के अनुकूल हो वह सत्य है, और उसके विरुद्ध असत्य है।

२—जो सृष्टि क्रम के अनुकूल हो, वह सत्य है और जो उसके विरुद्ध हो वह सब असत्य है। जैसे—कोई कहे कि बिना माता-पिता के कोई सन्तान उत्पन्न हो गई तो उसको कभी भी सत्य न माने क्योंकि ईश्वरीय नियम है कि सन्तान माता पिता से ही उत्पन्न होती है। इसलिये इसको असत्य ही जाने। जादू की बहुत सी चीज़ें जिस प्रकार बिना पेड़ के फल उत्पन्न हो जाना, या बिना सामग्री के तरह तरह की मिठाइयाँ बन जाना, आदि बातें सर्वथा असत्य हैं।

३—आप्त अर्थात् धार्मिक, विद्वान, सत्यवादी, निष्कपटी या सदाचारी पुरुष और देवियाँ जो उपदेश करें उसको मान लेना चाहिये।

४—जो चीज अपने को प्रिय है वह दूसरे को भी प्रिय होगी, और जो अपने को अप्रिय है वह दूसरे को भी अप्रिय होगी, ऐसा मानना प्रत्येक स्त्री पुरुष का धर्म है।

५—आठों प्रमाणों से भली प्रकार परीक्षा ले लेना। प्रमाणों की व्याख्या अलग की जायगी।

आठ प्रमाण

१—प्रत्यक्ष—कान, आँख, त्वचा आदि इन्द्रियों से जिस वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर लिया जाता है वह प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है, जैसे किसी स्त्री के

मुख को देख कर यह कहा जा सकता है कि वह सुन्दर है या नहीं। उसके सुरीले राग को सुनकर यह कहा जा सकता है कि उसका स्वर मधुर है। फूल की गंध को सूंघ कर यह कहा जा सकता है कि इसकी गंध अच्छी है।

२—अनुमान—जिस वस्तु का ज्ञान हमने प्रत्यक्ष रूप में एक स्थान पर किया है उसी ज्ञान का दूसरे स्थान पर अनुमान कर लेना। जिस प्रकार कि एक स्थान पर यह देखा गया कि माता से संतान उत्पन्न होती है तो दूसरे स्थान पर किसी बालक को देख कर उसकी माता का अनुमान किया जाता है। बादल जब आते हैं तो वर्षा होती है। जब वर्षा होती हमने देखी तो हमने यह अनुमान कर लिया कि बादल जरूर आये होंगे।

३—उपमान—जब कोई ज्ञान प्राप्त करने के लिये हम किसी वस्तु का साधन ले लेते हैं और उसके साधर्म से वह ज्ञान प्राप्त हो जाता है जैसे आपने किसी से कहा कि लक्ष्मी को बुला लाओ। उसने कहा कि मैंने लक्ष्मी को नहीं देखा है। आपने कहा जैसी यह सुशीला है उसी प्रकार की लक्ष्मी होगी। वह पुरुष अब जाकर लक्ष्मी को बुला लाता है। यहाँ पर सुशीला की मुखाकृति जिसको देख कर लक्ष्मी का ज्ञान हो गया उपमान है।

४—शब्द प्रमाण—जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारी पुरुष ज्ञान को प्राप्त करके दूसरे को उपदेश देते हैं उसको तथा जो उपदेश वेद में वर्णित है उनको भी शब्द प्रमाण जानना चाहिये।

५—ऐतिह्य—इतिहास अर्थात् कोई देवी इस प्रकार की थी और उसने इस प्रकार वीरता से कार्य किया। उसका जीवन चरित्र ऐतिह्य है।

६—अर्थापत्ति—किसी कारण के होने से कार्य उत्पन्न होता है बिना कारण हुये कार्य नहीं हो सकता। जिस प्रकार बादल के आ जाने से वर्षा हो सकती है और बिना बादल के वर्षा नहीं हो सकती।

७—संभव—जो चीज संभव हो अर्थात् सृष्टि-क्रम के अनुकूल हो जैसे, चन्द्रमा के टुकड़े होना, हनुमान का पहाड़ उठाना, बन्ध्या के पुत्र पुत्री का

विवाह होना, मर के जिन्दा हो जाना आदि आदि बातें सम्भव नहीं है।

८—अभाव—किसी वस्तु का न होना अभाव है। जैसे, किसी ने कहा कि घर से कन्या को बुला लाओ। कन्या घर में न थी पाठशाला में थी वहाँ से मनुष्य कन्या को ले आया।

पठन पाठन विधि

संस्कृत के अनेकानेक व्याकरण इस समय बन गये हैं परन्तु उनको न पढ़ कर पाणिनी महर्षि का बनाया हुआ व्याकरण पढ़ाना चाहिये। उसके बाद यास्क मुनि का निघण्टु, पिंगलाचार्य का छन्द ग्रन्थ, मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण और महाभारत के उत्तम स्थल, पूर्व मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त दर्शन, ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक १० उपनिषदें, ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ चारों ब्राह्मण आदि ग्रंथ पढ़ाना चाहिये। इन सब का अर्थ और यथोचित ज्ञान भी करा देना चाहिये।

जहाँ तक संभव हो ऐसे ग्रन्थों में बहुत सी बातें इस प्रकार की मिलाई गई हैं जिनके पढ़ने से लाभ के बजाय हानि होती है और संसार में अज्ञान फैलता है।

स्त्री और शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार है

आधुनिक युग में बहुत से स्वार्थी और अज्ञानी पण्डितों ने श्लोक रच लिये हैं :—

'स्त्री शूद्रो नाधीयातामिति श्रुतेः॥'

अर्थात् स्त्री और शूद्र अध्ययन न करें। ऐसा श्रुति कहती है।'

पंडितों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये ऐसा मंत्र रच लिया है क्योंकि वे जानते थे कि अगर स्त्री और शूद्र धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ेंगे तो वे उनके चंगुल में आसानी से नहीं फँस सकते, अगर वे अज्ञानी रहेंगे तो उनसे रुपये

ठगने मे बहुत आसानी होगी—वेदो मे कही ऐसा नही लिखा कि वेद स्त्री और शूद्र के लिये नही बनाये गये। उसमें स्पष्टरूप से लिखा है कि वेद शूद्र स्त्री तथा ससार के प्रत्येक प्राणी के लिये बनाये गये है।

प्राचीन काल मे जिस प्रकार बालक बालको के गुरुकुल मे ब्रह्मचर्य धारण कर वेदादि शास्त्रो का अध्ययन करते थे, इसी प्रकार लडकियाँ भी कन्याओं की पाठशाला मे जाकर शिक्षा ग्रहण करती थी। वेद मे आया है कि—

'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।'

अर्थात् कुमारी ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्र को पढकर युवा पुरुष को प्राप्त होवे।

यज्ञादि मे भी स्त्रियाँ बराबर भाग लिया करती थी। श्रोत्र सूत्रादि मे मे आया है 'इम मन्त्र पत्नी पठेत' अर्थात् इस मन्त्र को स्त्री पढे। यदि उस समय स्त्रियाँ विदुषी न होती तो मन्त्र को किस प्रकार पढती। शतपथ ब्राह्मण मे आया है कि गार्गी आदि स्त्रियाँ वेद शास्त्र को पढ कर पूर्ण विद्वान् हुई है। इसी प्रकार स्त्रियाँ धनुर्वेद अर्थात् युद्ध विद्या को सीख कर युद्ध मे भी भाग लिया करती थी। इसी प्रकार गणित विद्यां आदि सभी विद्याओं का ज्ञान प्राचीन काल मे दिया जाता था।

चतुर्थ समुल्लास

समावर्त्तन, विवाह और गृहस्थाश्रम की विधि

विवाह की अवस्था

मनुस्मृति में आया है—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत ॥

[३ । २]

अर्थात् चारों वेद, तीन वा दो अथवा एक को अच्छी प्रकार से पढ़ कर कन्या जिसका ब्रह्मचर्य खंडित न हुआ हो वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। सोलह वर्ष की अवस्था से लेकर पच्चीस वर्ष की अवस्था तक कन्या पच्चीस वर्ष से लेकर अड़तालीस वर्ष के पुरुष के साथ नियमानुसार विवाह करे। सोलह वर्ष के पूर्व किसी भी प्रकार से विवाह नहीं करना चाहिये। सुश्रुत ऋषि ने अपने ग्रन्थ में लिखा है।

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥१॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥२॥

अर्थ—सोलह वर्ष से न्यून आयु वाली स्त्री मे पच्चीस वर्ष के न्यून आयु वाला पुरुष जो गर्भ को स्थापन करे तो वह कुत्सित्व हुआ गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता अर्थात् पूर्ण काल तक गर्भाशय मे रहकर उत्पन्न नही होता ॥१॥

अथवा उत्पन्न होवे तो फिर चिरकाल तक न जीवे वा जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो, इस कारण से अति बाल्यावस्था वाली स्त्री मे गर्भ स्थापन न करे ॥२॥

बहुत से ब्राह्मणो ने कपोलकल्पित श्लोक गढ लिये है जिनके अनुसार आठ वर्ष मे ही विवाह हो जाता है। कहीं कहीं तो जन्म होते ही विवाह कर डालते है। माताओं का कर्त्तव्य है कि इन प्रथाओं को जड से उखाड़ दे, क्योंकि शीघ्र विवाह हो जाने से कन्याओं का स्वास्थ्य बिगड जाता है और जो सन्तान उत्पन्न होती है वह बड़ी दुर्बल और रोगी होती है।

विवाह कहाँ न करना चाहिये ?

जो कन्या माता की कुल की ६ पीढियो मे न हो और पिता के गोत्र की न हो, उस कन्या के साथ विवाह करना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो दूर के कुल मे ही विवाह हो। इस प्रकार से पारिवारिक सुख अधिक बढ़ सकता है।

प्रश्न—विवाह तय करना किसके आधीन होना चाहिये ?

उत्तर—लडका लड़की के आधीन होना अति उत्तम है क्योंकि उनकी प्रसन्नता को देखकर विवाह करना चाहिये नही तो वे आपस मे सुखी नहीं हो सकते। विवाह करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि दोनो का स्वभाव और गुण एक प्रकार के हों, अन्यथा आपस मे लडाई झगड़ा हुआ करेगा। गुरु और माता पिता को चाहिये कि विवाह के निश्चय करने मे पूर्ण रूप से सहायक होवे।

विवाह संस्कार

जब विवाह निश्चय हो जावे तो वैदिक प्रणाली के अनुसार जिसका वर्णन "संस्कार विधि" मे आया है, विवाह किया जावे।

पश्चात् जिस दिन ऋतुदान देना योग्य समझे उसी दिन 'संस्कार-विधि' में दी गई विधि के अनुसार सब करके मध्य रात्रि वा दश बजे अति प्रसन्नता से सब के सामने पाणिग्रहणपूर्वक विवाह की विधि को पूरा करके एकान्त सेवन करे। पुरुष वीर्य्यस्थापन और स्त्री वीर्याकर्षक की जो विधि है उसी के अनुसार दोनों करे। जहाँ तक बने वहाँ तक ब्रह्मचर्य के वीर्य को व्यर्थ न जाने दें क्योंकि उस वीर्य का रज से शरीर उत्पन्न होता है वह अपूर्व उत्तम सन्तान होता है।

पुरुष वीर्य्य की स्थिति और स्त्री गर्भ की रक्षा और भोजन छादन इस प्रकार का करें कि जिससे पुरुष का वीर्य्य स्वप्न, मे भी नष्ट न हो और गर्भ मे बालक का शरीर, अत्युत्तम रूप, लावण्य, पुष्टि, बल, पराक्रमयुक्त होकर दशवे महीने मे जन्म होवे। विशेष उसकी रक्षा चौथे महीने से और अति विशेष आठवे महीने से आगे करनी चाहिये। कभी गर्भवती स्त्री रेचक, रूक्ष, मादक द्रव्य, बुद्धि और बलनाशक पदार्थों के भोजनादि का सेवन न करे किन्तु घी, दूध, उत्तम चावल, गेहूँ, मूग, उर्द आदि अन्न पान और देश का भी सेवन युक्ति पूर्वक करे।

गर्भ मे दो सस्कार एक चौथे महीने मे पुसवन और दूसरा आठवे महीने में सीमन्तोन्नयन विधि के अनुकूल करे। जब सन्तान का जन्म हो तब स्त्री और लड़के के शरीर की रक्षा बहुत सावधानी से करे अर्थात् शुण्ठीपाक अथवा सौभाग्य शुण्ठीपाक प्रथम ही बनवा रक्खे। उस समय सुगन्धियुक्त उष्ण जल जो कि किञ्चित उष्ण रहा हो उसी से स्त्री स्नान करे और बालक को भी स्नान करावे। तत्पश्चात् नाड़ीछेदन बालक की नाभि के जड़ मे एक कोमल सूत से बाध चार अगुल छोड़ के ऊपर से काट डाले। उसको ऐसा बाधे जिससे शरीर से रुधिर का एक बिन्दु भी न जाने पावे। पश्चात् उस स्थान को शुद्ध करके उसके द्वार के भीतर सुगन्धादियुक्त घृतादि का होम करे। तत्पश्चात् सन्तान के कान मे पिता 'वेदोसीति' अर्थात् 'तेरा नाम वेद है' सुनाकर घी और शहद को लेके सोने की शलाका से चटवावे। पश्चात् उसको

माता को दे देवें। जो दूध पीना चाहे तो उसकी माता पिलावे, जो उसकी माता के दूध न हो तो किसी स्त्री की परीक्षा करके उसका दूध पिलावे। पश्चात् दूसरी शुद्ध कोठरी वा कमरे में कि जहाँ का वायु शुद्ध हो उसमें सुगन्धित घी का होम प्रातः और सायकाल किया करे और उसी में प्रसूता स्त्री तथा बालक को रक्खे। बालक छः दिन तक माता का दूध पिये। स्त्री को चाहिये कि शरीर की पुष्टि के लिये अनेक प्रकार के उत्तम भोजन करे। छठे दिन स्त्री बाहर निकले और यदि हो सके तो सन्तान के दूध पीने के लिये कोई धायी रक्खे। उसको खान पान अच्छा करावे। वह सन्तान को दूध पिलाया करे। और पालन भी करे परन्तु उसकी माता लड़के पर पूर्ण दृष्टि रक्खे। किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार उसके पालन में न हो। पश्चात् नामकरणादि संस्कार 'संस्कारविधि' की रीति से यथाकाल करता जाय।

पारिवारिक सुख

जब विवाह हो जावे तो स्त्री और पुरुष दोनों को प्रेम पूर्वक रहना चाहिये। पति का कर्त्तव्य है कि पत्नी को सब प्रकार से सुखी रखने का प्रयत्न करे क्योंकि जिस कुल में पत्नी से पति और पति से पत्नी प्रसन्न रहते हैं उसी कुल में सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जहाँ कलह होती है वहाँ पर दुर्भाग्य और दारिद्रय सदा रहा करता है। परिवार में रहते हुए पति और पत्नी दोनों को पंच महायज्ञ जिनका वर्णन "पंचमहायज्ञ महाविधि" में आया है बराबर करना चाहिये।

स्त्री और पुरुष का वियोग किसी समय भी न होना चाहिये, यदि पुरुष बाहर जावे तो अपनी पत्नी को भी अपने साथ ले जावे। इसी में दोनों का कल्याण है।

प्रश्न—एक विवाह करना चाहिये या स्त्री पुरुष अनेक विवाह करें।

उत्तर—"युगपत न," अर्थात् एक समय में एक से अधिक विवाह नहीं करना चाहिये क्योंकि अनेक विवाह करने से आपस का प्रेम चला जाता है

और ब्रह्मचर्य भी नष्ट होता है। यदि विवाह के उपरान्त स्त्री पुरुष का संयोग न हुआ हो और पति की मृत्यु हो जाय तो ऐसी कन्या का पुनर्विवाह कर देना चाहिये।

प्रश्न—विवाह करने से पुरुष बन्धन में पड़ जाता है, और अनेक कष्ट भी होते हैं इसलिये विवाह न करके जिस स्त्री के साथ चाहे रहे।

उत्तर—यह व्यवहार पशुपक्षियों का सा है मनुष्यों का नहीं। मनुष्य का कर्तव्य है कि बुद्धि के अनुसार सभी कार्य करे, यदि विवाह की प्रथा उठ जायेगी तो गृहस्थाश्रम का सुख नष्ट हो जायेगा। सब प्रकार के नियम दूर हो जायेंगे, व्यभिचार की वृद्धि होगी। इस प्रकार जो सन्तान उत्पन्न होगी वह बड़ी दुर्बल होगी। स्त्री पुरुष एक दूसरे की सेवा न करेंगे और न उसमें किसी प्रकार की लज्जा ही होगी।

वर्ण

वर्ण चार प्रकार के बताये गये हैं :—

(१) ब्राह्मण।

(२) क्षत्रिय।

(३) वैश्य।

(४) शूद्र।

ब्राह्मण के कर्त्तव्य हैं पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान लेना देना।

क्षत्रिय के कर्तव्य—न्याय से प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन करना, विषयों में न फँसकर जितेन्द्रिय रहना और बल से सब की रक्षा करना।

वैश्य के कर्तव्य—गाय आदि पशुओं का पालन करना, दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन करना, वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करना, व्यापार करना, व्याज लेना, कृषि करना।

शूद्र का कर्तव्य—निन्दा, ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषों को छोड़ कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णों की सेवा करना।

प्रश्न—क्या वर्ण बदल सकता है।

उत्तर—हाँ ! वर्ण कर्मों के अनुसार होता है जन्म के अनुसार नहीं । उत्तम कर्म करने वाला क्षत्रिय या वैश्य या शूद्र ब्राह्मण हो सकता है और दुराचारी अधर्मी ब्राह्मण दूषित कर्म करने से शूद्र कहा जाता है, प्राचीन काल में भी बहुत से मनुष्यों ने अन्य वर्णों से ब्राह्मण की पदवी को प्राप्त किया था। छान्दोग्य उपनिषद में आया है कि जाबाल ऋषि ब्राह्मण हो गये थे। विश्वामित्र क्षत्री से ब्राह्मण तथा मातंग ऋषि चाण्डाल से ब्राह्मण की पदवी को प्राप्त हुये थे।

प्रश्न—ब्राह्मण रज वीर्य से उत्पन्न हुआ पुरुष सदा ब्राह्मण ही रहेगा और कर्मों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ?

उत्तर—यह बात तुम्हारी ठीक नहीं । रज वीर्य से ब्राह्मण नहीं होता। कर्म करने से मनुष्य ब्राह्मण होता है। मनुस्मृति में आया है।

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥

मनु० [२ । २८]

इसका अर्थ संक्षेप से कहते है। (स्वाध्यायेन) पढने पढाने (जपैः) विचार करने कराने, नाना विधि होम के अनुष्ठान, सम्पूर्ण वेदों के शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, स्वरोच्चारण सहित पढने पढाने, (इज्यया) पौर्णमासी, इष्टि आदि के करने, (सुतैः) पूर्वोक्त विधिपूर्वक धर्म से सन्तानोत्पत्ति, (महायज्ञैश्च) पूर्वोक्त ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्वदेवयज्ञ और अतिथियज्ञ (यज्ञैश्च) अग्निष्ठोमादियज्ञ, विद्वानों का संग, सत्कार, सत्यभाषण, परोपकारादि सत्यकर्म और सम्पूर्ण शिल्पविद्यादि पढ के दुष्टाचार छोड़ श्रेष्ठाचार में वर्त्तने से (इयम्) यह (तनुः) शरीर (ब्राह्मी) ब्राह्मण का (क्रियते) किया जाता है।

यदि रज और वीर्य से ही ब्राह्मण बनता तो जो ब्राह्मण मुसलमान और ईसाई हो गये, उनकी भी गिनती ब्राह्मणों मे ही होती और उनका भी वैसा ही आदर होता परन्तु ऐसा हम होते नही देखते । इस कारण से तुम्हारी बात ठीक नही है ।

जो कर्म पुरुषों के गिनाये गये है वही स्त्रियों के भी समझना चाहिये और स्त्रियों को भी उचित है कि जिस प्रकार पुरुष धार्मिक कृत्य करें वैसा ही उनको भी करना चाहिये ।

पाँचवां समुल्लास

वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम

चार आश्रम

वैदिक साहित्य मे मनुष्य जीवन के चार विभाग माने गये है, इनमे से पहला ब्रह्मचर्य, दूसरा गृहस्थ, तीसरा वानप्रस्थ, चौथा संन्यास यह चारो ही आश्रम मनुष्य जीवन के लिये बहुत ही आवश्यक है। प्राचीन काल मे स्त्रियाँ भी इन आश्रमों का पालन किया करती थी । प्रथम दो आश्रमों के लिये कुछ उपदेश पिछले समुल्लासो मे दिया जा चुका है। जब गृहस्थी के शिर के बाल सफेद हो जॉय, त्वचा ढीली पड जाय और पुत्र के पुत्र उत्पन्न हो जाय तब वन या एकान्त मे ससार के बन्धनो को छोड कर चला जाना चाहियें और इस अवस्था मे शरीर को विशेष सयम के अनुसार रखना चाहिये। वन मे जाकर कद-मूल फल इत्यादि पर जीवन निवाह करना चाहिये । संन्यासी होकर पुरुष संसार को शिक्षा देने का अधिकारी हो जाता है अतः इस अवस्था मे सब प्रकार से तैयारी कर लेनी चाहिये ।

संन्यासी कब बनें

तीनों आश्रमों को नियम पूर्वक बिता कर जो पुरुष जितेन्द्रिय, पूर्ण विद्वान् होवे वह सन्यास आश्रम को ग्रहण करे। जिनको ब्रह्मचर्य अवस्था में ही पूर्ण वैराग्य हो जावे वह इन तीनों आश्रमों को न पालन करके ही सीधे सन्यास को प्राप्त हो सकता है। मनुस्मृति में सन्यासियों के लिये बहुत से कर्त्तव्य लिखे हैं। उनमें से कुछ यहाँ पर देते हैं। सन्यासी मार्ग में जब चले तब इधर उधर न देख कर नीचे को दृष्टि रक्खे, वस्त्र से छान कर जल पिये, सत्य को ग्रहण करे, असत्य को त्याग दे, क्रोध न करे, मद्य-मांसादि छोड़ देवे, केश नख दाढी मूँछ छेदन करे, किसी से वैर न करे, इन्द्रियों का दमन करे, प्राणायाम करे।

प्रश्न—सन्यास ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर—जैसे शरीर में सिर की आवश्यकता होती है उसी प्रकार आश्रमों में सन्यास आश्रम की आवश्यकता है। यदि सन्यासी गृहस्थियों को सत्य उपदेश न दें तो उनको शिक्षा देने वाला कौन होगा। सन्यासी सच्चा धर्म और ज्ञान का प्रचार करने वाले होते हैं। जब गृहस्थी स्त्री पुरुषों को किसी प्रकार का दुःख होता है तो वह संन्यासियों की सेवा में आकर उपस्थित होते हैं और सन्यासी उनको सान्त्वना देते हैं, वे दुख में दुख प्रकट करते हैं और सुख में उनके आनन्द और उत्साह की वृद्धि करते हैं। जब सन्यासी या संन्यासिनी किसी पुरुष या स्त्री को बुरे मार्ग पर जाते हुये देखते हैं तो उनका यह कर्तव्य हो जाता है कि वे उस स्त्री या पुरुष को बतलावें कि यह रास्ता उनको रसातल की ओर ले जाने वाला है, उनके आनन्द को किसी भी प्रकार से बढाने वाला नहीं। यही कारण है कि गृहस्थियों को यह उपदेश दिया गया है कि जब कभी विद्वान् सन्यासी उनके द्वार पर आवें तो सब प्रकार से उनकी सेवा शुश्रुषा करें और उनके सत्संग से लाभ उठावें।

प्रश्न—साधू, वैरागी, गोसाईं, खाकी, आदि सन्यासी हैं या नहीं?

उत्तर—कभी नहीं । स्त्री पुरुषों के अज्ञान के कारण उनकी भारतवर्ष में इतनी महिमा हो गई है। धूर्त पाखण्डी पुरुष जो किसी प्रकार से धन का उपार्जन नहीं कर सकते, जो परिश्रम से घबड़ाते हैं, जिनको मनुष्य के कल्याण में जरा सी भी प्रीति नहीं है, जो आचार में साधारण पुरुषों से गिरे हुये हैं वे कपड़े रंगा कर धर्मात्मा का स्वरूप धारण कर संन्यासी बन बैठते हैं। ऐसे पुरुषों से पृथ्वी पर अनर्थ हो रहा है। भारतवर्ष में इस समय गेरुये वस्त्र धारण करने वाले लाखों सन्यासी हैं जो भारतवर्ष के एक कोने से दूसरे कोने तक चिमटा हिलाते हुये भीख मांगते फिरते हैं। हमारी देवियां उनमें अन्ध-श्रद्धा धारण कर अपने धन का नाश कर रही हैं। वैसे सन्यासियों की सहायता देने से कोई लाभ नहीं, यदि थोड़े से सन्यासी सच्ची लगन से धर्म का उपदेश करें तो बेड़ा पार हो सकता है। परन्तु हमारी देवियां मेलों और मन्दिरों में इन नामधारी साधुओं के हाथ जोड़ती हुई या पैरों पड़ती हुई दिखाई पड़ती हैं। जो धर्मात्मा, जितेन्द्रिय व सत्य का उपदेश देने वाला पुरुष है वही सच्चा सन्यासी और उसी का सम्मान करना योग्य है।

छठा समुल्लास

राजधर्म का वर्णन

वेद में आया है :—

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।

[ऋग्वेद म० ३ । सू० ३८ । म० ६ ।

अर्थात्—राजा और प्रजा दोनों मिलकर सुख की प्राप्ति और ज्ञान की वृद्धि के लिये तीन सभा—

ईश्वर की सर्व व्यापकता

प्रश्न—क्या ईश्वर सर्व व्यापक है ?

उत्तर—हाँ, ईश्वर किसी एक विशेष स्थान मे नही रहता, जैसा बहुत से अज्ञानी मानते है। एक स्थान पर रहने से ईश्वर ससार के काम को नही कर सकता। जिस प्रकार एक स्त्री अपने घर मे रहते हुये किसी दूसरे के घर की रसोई नही पका सकती क्योंकि वह दूसरे घर मे विद्यमान नही है, ठीक इसी प्रकार ईश्वर भी एक स्थान पर बैठा हुआ सारे जगत के कार्यों को नहीं कर सकता। ईश्वर सर्वान्तरयामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सब का बनाने वाला, सब का पालन करने वाला, सबका नाश करने वाला है। यदि वह प्रत्येक प्राणी के अन्दर न बैठा होता तो किस प्रकार उसके मन मे, उठे हुये भावो को जानता, किस प्रकार पाप पुण्यो को गिनता, किस प्रकार प्राणियो की सहायता करता।

ईश्वर दयालु और न्यायकारी है

प्रश्न—क्या ईश्वर दयालु और न्यायकारी दोनो है ?

उत्तर—कुछ बहिने यह शंका करती है कि ईश्वर दयालु और न्यायकारी दोनो नही हो सकता। क्योंकि एक स्त्री ने जब कोई कुकर्म किया और न्यायाधीश ने उसको कुकर्म का दण्ड दिया तो उस स्त्री पर दया नही करता और दया करके यदि दण्ड नही देता तो अपने न्याय से गिर जाता है। मोटे रूप से विचार करने मे यह दोनो शब्द भिन्न मालूम देते है, पर वास्तव मे भिन्न नही। वे दोनो एक ही भाव को प्रकट करते है। जब ईश्वर किसी स्त्री को उसके कुकर्मो के लिये दण्ड देता है न्याय हो जाता है, परन्तु दण्ड देने से उस स्त्री पर दया भी हो जाती है, क्योंकि यदि न्यायाधीश या ईश्वर उस स्त्री को दण्ड न दे तो वह स्त्री और भी बड़े बड़े पापो को करने लगेगी और उन पापों को करके घोर नरक में पड़ेगी।

युक्त। जिसमें दिव्य गुण पाये जाते है उसको देवता कहते है जैसे पृथ्वी। देवता से यह नही समझना चाहिये कि वे कोई ऐसी चीज़ें है जिनसे हम डरें या उनकी पूजा करें। इसी प्रकार जो दिव्य गुण से युक्त स्त्री होती है उसको देवी कहते है।

तैंतीस देवता

प्रश्न—देवता कितने है ?

उत्तर—देवता तैंतीस माने गये है। उनके नाम इस प्रकार है :—

(१) आठ वसु—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र।

(२) ग्यारह रुद्र—प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा। ये सब शरीर को छोड़ते है तो बड़ा रुदन कराते है।

(३) संवत्सर के बारह महीने—ये मनुष्य की आयु को लेते जाते है।

(४) इन्द्र।

(५) प्रजापति।

ईश्वर की सिद्धि

प्रश्न—ईश्वर की सिद्धि किस प्रकार करोगे ?

उत्तर—सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से। ईश्वर ने हमको दस इन्द्रियाँ दी है। उनके द्वारा हम संसार में ईश्वर की बनाई हुई कारीगरी को देखते हैं। गुणों को देखकर गुणी का ज्ञान हो जाता है। जिस समय हम संसार में विचित्र चीजों को देखते है तो उसी समय हम उनके बनाने वाले परमात्मा का भी अनुमान कर लेते है। परमात्मा हमारे अन्दर बैठा है। हमको अच्छे मार्ग पर चलाता है और जब हम बुरा काम करने लगते है तो हमको भय, शंका, लज्जा उत्पन्न हो जाती है। यह ईश्वर के होने का बहुत बड़ा प्रमाण है।

की आवश्यकता नहीं पडती। संसार में सर्वशक्तिमान् शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ लिये जाते है। बहुत सी बहने यह समझती है कि सर्वशक्तिमान् के अर्थ ये है कि जो चाहे कर ले। ऐसी बहिनों से यह पूछना चाहिये। क्या ईश्वर चोरी कर सकता है? व्यभिचार कर सकता? अपने को मार सकता है? अपने समान शक्तिशाली और गुणज्ञ दूसरा ईश्वर बना सकता है? सब बहिने यही कहेगी ईश्वर ऐसा नहीं कर सकता। इसलिये सर्वशक्तिमान् का अर्थ यही है कि ईश्वर अपने काम मे किसी दूसरे की सहायता नहीं लेता।

ईश्वर की प्रार्थना

प्रश्न—क्या प्रार्थना करने से हमारे पाप नष्ट हो जायेंगे?

उत्तर—ईश्वर न्यायकारी है। प्रार्थना करने से वह अपने न्याय को नहीं बदलेगा। जैसे तुमने कर्म किये है उनका फल तो तुमको अवश्य ही मिलेगा। स्तुति करने से ईश्वर मे प्रेम बढता है। उसके गुणो का स्मरण करते करते हम में भी वही गुण आ जाते है। जिस समय ईश्वर की उपासना की जाती है उस समय मनुष्य अपने अभिमान को भूल जाता है। प्रार्थना करने से ईश्वर से सहायता मिलती है और हम मे उत्साह बढता है इसलिये प्रार्थना करनी चाहिये।

कुछ प्रार्थना मत्र यहा देते है—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्यमेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥१॥

यजु० ॥ अ० ३२ । म० १४ ॥

हे अग्ने! अर्थात् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर आप कृपा करके जिस बुद्धि की उपासना विद्वान्, ज्ञानी और योगी लोग करते है उसी बुद्धि से युक्त हम को इसी वर्त्तमान समय मे बुद्धिमान् कीजिये ॥ १ ॥

इसलिये ईश्वर में दोनों गुण पाये जाते हैं। ईश्वर दयालु भी है और न्यायकारी भी है।

ईश्वर निराकार है

प्रश्न—ईश्वर का कैसा आकार है।

उत्तर—बहुत सी बहिनें जो मूर्ति पूजा करती हैं या जो अज्ञान में फँसी हुई हैं उनका विचार है कि ईश्वर साकार है अर्थात् जिस प्रकार एक स्त्री के मुख नाक कान और आदि होते हैं उसी प्रकार एक ईश्वर के भी शरीर है। परन्तु बात इससे बिलकुल उल्टी ही है। ईश्वर निराकार है अर्थात् उसका कोई स्वरूप नहीं। यदि उसको साकार मानेंगे तो निम्न कठिनाइयाँ पड़ेगी :—

(१) ईश्वर सर्व व्यापक न होगा। जिस चीज का आकार होता है वह एक ही स्थान पर रह सकती है। एक स्त्री एक ही समय में लखनऊ और प्रयाग में नहीं रह सकती इस लिये यदि ईश्वर का आकार होता तो वह सर्व व्यापक न हो सकता।

(२) ईश्वर सर्वज्ञ न होता। एक स्थान में रहने से उसको सब स्थानों का ज्ञान न होता।

(३) साकार होने के कारण ईश्वर में वही दोष आ जाते हैं जो हममें हैं। एक स्त्री को भूख लगती है, प्यास लगती है। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह में फँसी हुई है। ईश्वर की भी यही दशा हो जाती। वह भी जन्म मरण के बन्धन में पड़ता।

ईश्वर सर्वशक्तिमान है

प्रश्न—क्या ईश्वर सर्वशक्तिमान है ?

उत्तर—हाँ ! ईश्वर सर्वशक्तिमान है। सर्वशक्तिमान के अर्थ हैं कि ईश्वर अपने कार्य करने में किसी की सहायता नहीं लेता। उसको सहायता

चौका लग जाय, रोटी बन जाय या किसी शत्रु का नाश हो जाय ऐसी प्रार्थनाएँ कभी सफल नही हो सकती।

ईश्वर अवतार नहीं लेता

प्रश्न—क्या ईश्वर अवतार नही लेता है ?

उत्तर—नही, बहुत सी बहिने यह समझती है कि ईश्वर अवतार लेता है। हिन्दुओ ने ईश्वर के चौबीस अवतार माने है और उनके विषय में बहुत सी कपोल कल्पित बाते बना ली है। यह सब अज्ञान के कारण है। यदि ईश्वर अवतार लेगा तो उसमे वही सब अवगुण आजायेंगे ? जो साकार मे आ जाते है और जिनका वर्णन पहिले किया जा चुका है। बहुत सी बहने युक्ति देती है कि यदि ईश्वर अवतार न ले तो ससार के बहुत से काम न हो सके जैसे रावण कसादि को मारना परन्तु वे यह नही सोचती है कि रावण, कसादि को जिसने जन्म दिया है वही उसका सहार भी कर सकता है। जब ईश्वर ससार के इतने प्राणियो का वध करने के लिये जन्म नही लेता तो रावण, कसादि के मारने के लिये जन्म लेने की क्या आवश्यकता थी। वह तो स्वय उनके अन्दर विराज रहा था और जिस समय चाहता उनके प्राण हरण कर सकता था।

अवतार लेने के अर्थ होते है एक स्थान से दूसरे स्थान पर उतरना। जो चीज एक स्थान पर नही है वह दूसरे स्थान से आ सकती है। परन्तु उस स्थान पर वह चीज यदि पहिले से है तो उस स्थान पर कैसे आयेगी।

जब लोगो ने यह माना कि ईश्वर किसी एक पर्वत पर विराजमान है तब उन्होने यह भी मान लिया कि वह वहाँ से उतर कर आया। परन्तु ईश्वर सब स्थानो मे व्यापक है तो उसके लिये यह कहना कि वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर गया कभी सम्भव नही।

जीव स्वतंत्र है और परतंत्र भी

प्रश्न—जीव स्वतन्त्र है या नही ?

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि।

यजु० ॥ अ० १९ । मं० ॥ ९ ॥

आप प्रकाशस्वरूप हैं, कृपा कर मुझ में भी प्रकाश स्थापन कीजिये। आप अत्यन्त पराक्रमयुक्त हैं इस लिये मुझ में भी कृपा-कटाक्ष से पूर्ण पराक्रम धरिये। आप अनन्त बलयुक्त हैं (इसलिये) मुझमें भी बल धारण कीजिये। आप अनन्त सामर्थ्ययुक्त हैं इस लिये मुझको भी पूर्ण सामर्थ्य दीजिये। आप दुष्ट काम और दुष्टों पर क्रोधकारी हैं। मुझको भी वैसा ही कीजिये। आप निन्दा स्तुति और स्वअपराधियों का सहन करने वाले हैं, कृपया मुझको भी वैसा कीजिये॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवन्तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

यजु० ॥ अ० ३४ । मं० १, २, ३, ४, ५, ६ ॥

हे दयानिधे! आप की कृपा से मेरा मन जागते में दूर दूर जाता, दिव्यगुणयुक्त रहता है और वही सोते हुये मेरा मन सुषुप्ति को प्राप्त होता व स्वप्न में दूर दूर जाने के समान व्यवहार करता, सब प्रकाशकों का प्रकाशक, एक वह मेरा मन शिवसङ्कल्प अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियों के कल्याण का सङ्कल्प करने हारा होवे। किसी की हानि करने की इच्छा-युक्त कभी न होवे॥ ३॥

बहुत सी बहिनें मूर्खता से ऐसी प्रार्थना करती हैं जो कभी सफल नहीं हो सकती। जैसे यदि कोई बहन ईश्वर से यह प्रार्थना करे कि ईश्वर

ही से निकली है। जिस प्रकार संसार में वेदों द्वारा ज्ञान फैला है उसी तरह ससार की भाषाएँ भी वेदो के द्वारा ही फैली हैं।

प्रश्न—वेद ईश्वर कृत है इसमें क्या प्रमाण है ?

उत्तर—वेद ईश्वर कृत है। ईश्वर पवित्र, सब विद्याओं को जानने वाला, न्यायकारी, दयालु आदि गुण वाला है। वेदों मे भी ईश्वर के ऐसे ही गुण लिखे है। वेद की जितनी बाते है वे सब प्रत्यक्षादि प्रमाणो द्वारा सिद्ध की जा सकती है। इसलिये उसको भी ईश्वरकृत ही समझना चाहिये।

प्रश्न—वेदो की कोई आवश्यकता नहीं ? मनुष्य ज्ञान को बढाते-बढाते पुस्तकें भी बना लेंगे ?

उत्तर—ऐसा कभी सम्भव नहीं। यदि कोई बालक या बालिका पढ़े लिखे मनुष्य से हटाकर एक निर्जन स्थान मे रख दी जाय तो उस बालक या बालिका का ज्ञान कभी बढ नहीं सकता। वह ज्यों की त्यों मूर्ख ही रहेगी। इस समय भी ससार में बहुत जातियाँ है जहाँ ज्ञान का सूर्य नहीं पहुँचा। अब भी वे जगली बनी हुई है। उनमे न भाषा ज्ञान ही है और न वैज्ञानिक ज्ञान ही। वे अब भी जगली अवस्था में हैं। अगर तुम्हारी युक्ति ठीक होती तो वे भी ज्ञान बढा लेती। भारतवर्ष से ही मिश्र, यूनान और यूरुप में ज्ञान फैला। अमेरिका, कोलम्बस के जाने के पूर्व अज्ञान के अन्धकार में फँसा हुआ था और यूरुप के ससर्ग से उसने उन्नति प्राप्त की। इसलिये सृष्टि मे ज्ञान के प्रचार के लिये वेदो का प्रकाश बहुत आवश्यक था।

प्रश्न—वेद कितने है।

उत्तर—चार है (१) ऋग्वेद (२) यजुर्वेद (३) सामवेद (४) अथर्ववेद।

प्रश्न—वेदों की कितनी शाखाये है ?

उत्तर—ग्यारह सौ सत्ताइस।

प्रश्न—शाखा क्या कहाती है ?

उत्तर—जीव अपने कार्य मे बिल्कुल स्वतन्त्र है [illegible] है। यह उसकी इच्छा के ऊपर निर्भर है कि वह पुण्य करे या पाप करे, परन्तु फल भोगने मे वह ईश्वर के परतन्त्र है जैसा वह कर्म करेगा वैसा उसको फल मिलेगा।

जीव और ईश्वर के गुणों की तुलना

प्रश्न—ईश्वर और जीव में क्या भेद है ?

उत्तर—ईश्वर और जीव दोनो ही चेतन स्वरूप है। दोनो का स्वभाव पवित्र है, दोनो का न आदि है न अन्त है। परमेश्वर ससार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है, सब को नियम मे रखता है, जीवों को पाप पुण्य का फल देता है। जीव सान्तानोत्पत्ति उनका पालन शिल्पादि कर्म करता है। ईश्वर मे सारे सुख विद्यमान है। जीव सुखी नही। आनन्द की प्राप्ति के लिये जीव को ईश्वर की शरण मे जाना पड़ता है।

वेदों का प्रकाश

जगत के कल्याण के लिये ईश्वर ने वेदो का प्रकाश ऋषियो द्वारा किया। ऋग्वेद अग्नि ऋषि के द्वारा, यजुर्वेद वायु ऋषि के द्वारा, सामवेद आदित्य ऋषि के द्वारा, अथर्ववेद अगिरा ऋषि के द्वारा। सृष्टि को आदि मे चारो ऋषि बड़े पवित्र आत्मा थे इसलिये ईश्वर ने उनके द्वारा ही वेदो का प्रकाश किया।

प्रश्न—वेदो का प्रकाश किसी देशी भाषा मे क्यो नहीं किया गया, सस्कृत भाषा मे क्यो किया गया।

उत्तर—यदि ईश्वर किसी देश की भाषा म वेदो का प्रकाश करता तो यह पक्षपाती समझा जाता क्योंकि जिस देश की भाषा मे करता, उस देश के वासियो को वेदो का ज्ञान समझने मे बड़ी सरलता पड़ती, इसलिये उसने वेदो का ज्ञान सस्कृत ही मे दिया। ससार की जितनी भाषाये है वे सब वेद

मित्रतायुक्त सनातन अनादि है और (समानम्) वैसा ही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय मे छिन्न भिन्न हो जाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनो के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि है। इन जीव और ब्रह्म मे एक जो जीव है वह इस वृक्ष-रूप ससार मे पापपुण्यरूप फलो को (स्वाद्वत्ति) अच्छे प्रकार भोगता है और दूसरा परमात्मा कर्मो के फलो को (अनश्नन्) न भोगता हुआ चारो ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनो से प्रकृति भिन्नस्वरूप तीनो अनादि है॥ १ ॥ (शाश्वती) अर्थात् सनातन जीवरूप प्रजा के लिये वेद द्वारा परमात्मा ने सब विद्याओं का बोध किया है ॥ २ ॥

तीन चीजे अनादि कही गई है (१) ईश्वर (२) जीव (३) प्रकृति। इन तीनो के सहारे यह जगत बना है। ईश्वर जगत् को बनाने वाला है। प्रकृति वह सामान है जिससे जगत् को बनाता है। कुछ सम्प्रदायो ने यह समझ रक्खा है कि ससार मे केवल एक ही चीज है और वह ईश्वर है और उसी से सारा जगत बना है, परन्तु बात ऐसी नहीं है। जगत् तीनो से ही बनता है।

प्रश्न—जगत के बनने के कै कारण है ?

उत्तर—जगत के बनने के तीन कारण है—

(१) निमित्त कारण—निमित्त कारण उसको कहते है जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने, आप स्वय बने नही दूसरे के स्वरूप को बना दे।

(२) उपादान कारण—जिसके बिना कुछ न बने, जिसका रूप बने या बिगडे।

(३) साधारण कारण—यह जगत के बनाने मे साधन होता है।

ससार को जब हम देखते है तो इसमे दो निमित्त कारण दिखाई पडते है (१) एक ईश्वर जो सृष्टि को बनाता है, धारण करता है और उसको

उत्तर—व्याख्यान को शाखा कहते हैं।

प्रश्न—वेद नित्य है या अनित्य ?

उत्तर—ईश्वर नित्य है उसके गुण, कर्म, ज्ञान भी नित्य ही हैं। वेद ईश्वर का ज्ञान है इसलिये वह भी मर नहीं सकता। यदि ईश्वर वेदों का ज्ञान न देता तो ससार में अज्ञान ही फैला रहता। इसी के अनुसार सब को चलना चाहिये। यदि आपसे कोई पूछे कि आपका क्या मत है तो यही उत्तर देना कि हमारा मत वेद है अर्थात् जो कुछ वेदों में लिखा है हम उसी को मानती हैं।

आठवाँ समुल्लास

सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय

ऋग्वेद में आया है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ १ ॥

ऋ० म० १। सू० १६४। म० २० ॥

यजुर्वेद में आया है :—

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥

यजुः० अ० ४०। म० ८ ॥

(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश (सयुजा) व्याप्य-व्यापक भाव से संयुक्त (सखाया) परस्पर

और (२) मकडी का शरीर जो जड है। जगत मे इसी प्रकार ईश्वर चेतन है और प्रकृति जड है ? जिसकी सहायता से ईश्वर ससार को बनाता है।

प्रश्न—ईश्वर ने इस जगत को क्यो बनाया। अगर वह न बनाता तो स्वयं भी आनन्द लेता और जीवो को भी बन्धन में न पडना पडता ?

उत्तर—यह बाते आलसी और दरिद्र लोगो की है। सुख काम करने से होता है आलसी बैठे रहने से नही। यदि ईश्वर ससार न बताता तो वह अन्यायी सिद्ध होता। जब प्रलय अवस्था होती है तो जितने जीव है वह सब सुषुप्ति अवस्था मे पडे रहते है उनमे से कुछ जीव तो ऐसे होते है जिन्होने बुरे कर्म किये थे। उनको अपने कर्मो का दण्ड मिलन है और कुछ ऐसे जीव है जो अपने उत्तम कर्मो के कारण मुक्ति को प्राप्त होगे। यदि ईश्वर सृष्टि न रचता तो जिन जीवो को दण्ड मिलना है उनको दण्ड न मिलता और जिन जीवो को मुक्ति मिलनी है उनको मुक्ति प्राप्त न होती। इसलिये ईश्वर उन जीवो के साथ अन्याय करता।

आनन्द का प्रश्न तो उठता ही नही। जिस प्रकार आपसे पूछा जाय कि आँख बनाने का क्या प्रयोजन है। आप उत्तर देगी देखना। नेत्र का स्वभाव है कि वस्तुओ को देखे। यदि उसको किसी प्रकार देखने न दिया जाय तो आँखो को कष्ट ही होगा आनन्द नही। परमात्मा का स्वभाव सृष्टि को बनाना, धारण करना और प्रलय करना है इसलिये उसको इसमे विशेष परिश्रम नही करना पढता।

प्रश्न—ईश्वर सर्वशक्तिमान् कहा गया है तो वह उपादान कारण क्यों नही बना लेता।

उत्तर—सर्वशक्तिमान् के वही अर्थ है जो पहिले बताये जा चुके है इसलिये ईश्वर उपादान कारण नही बनता।

प्रश्न—ईश्वर साकार है वा निराकार है ? यदि निराकार है तो वह जगत को कैसे बनावेगा ?

प्रलय करता है। (२) जीव जो सृष्टि के पदार्थों को लेकर अपनी इच्छा के अनुसार भिन्न भिन्न स्वरूप बनाता है।

उपादान कारण प्रकृति है। जब ईश्वर सृष्टि बनाने लगता है तो प्रकृति से सब को बनाता है। प्रकृति जड है, वह स्वय कुछ नहीं कर सकती। वह अपना रूप नहीं बदल सकती। न अच्छी ही बन सकती है और न बुरी ही।

प्रश्न—नवीन वेदान्ती लोग यह समझते है कि परमेश्वर जगत का निमित्त और उपादान कारण दोनो है। वह युक्ति देते हैं कि जिस प्रकार मकडी अपने अन्दर से तन्तु निकाल कर जाला बना देती है उसी प्रकार परमात्मा भी अपने अन्दर से सब जगत को उत्पन्न कर देता है?

उत्तर—तुम्हारी बात ठीक नहीं। ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है परन्तु जगत असत्य जड और आनन्द रहित है। ब्रह्म उत्पन्न नहीं होता है, जगत उत्पन्न हुआ है। ब्रह्म दिखाई नहीं पडता जगत दिखाई पढता है। वैशेपिक सूत्र मे आता है—

'कारण गुण पूर्वकः कार्य्यो गुणो दृष्टः।'

अर्थात् जो गुण उपादान कारण मे होते है वही गुण उसी कार्य मे भी होते है जो बनाया गया हो जैसे, लकडी से कोई चीज बनाई गई। जो गुण लकडी मे है वही गुण उस वस्तु मे भी होंगे जो बनाई गई। परन्तु जैसा हम ऊपर बता चुके है परमात्मा के गुणो मे और जगत के गुणो मे बहुत बडा अन्तर है इससे पता चलता है कि ईश्वर इस जगत का उपादान कारण नहीं है। कोई ऐसी वस्तु उपादान कारण है कि जिसमे यह गुण पाये जाय। यह गुण प्रकृति मे पाये जाते है इसलिये प्रकृति ही जगत का उपादान कारण है।

यह मकडी वाली जो युक्ति नवीन वेदान्ती लोग देते है वह भी ठीक नहीं। मकडी जो तन्तु निकालती है वह अपने शरीर से निकालती है। तन्तु निकालने वाला जीवात्मा है जो मकडी के शरीर के अन्दर बैठा हुआ इस क्रिया को कर रहा है। इस प्रकार मकडी मे दो चीजे है (१) जीवात्मा चेतन

प्रश्न—इस जगत का कर्त्ता न था, न है और न होगा यह अनादि काल से ऐसे ही बना है और ऐसे ही बना रहेगा।

उत्तर—बिना कर्त्ता के कोई कार्य नहीं हो सकता। इस संसार में जब हम देखते हैं कि वस्तुएँ संयोग से बनी हैं तो इनका संयोग करने वाला कोई अवश्य होगा। हीरे के टुकड़े करके देखो वह भी छोटे-छोटे कणों से मिल-कर बना है इसी तरह से संसार के सब पदार्थ भी हैं।

प्रश्न—कल्प कल्पान्तर में ईश्वर सृष्टि विलक्षण विलक्षण बनाता है अथवा एक सी?

उत्तर—जैसी कि अब है वैसी पहिले थी और आगे होगी, भेद नहीं करता—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥

ऋ० ॥ मं० १० । सू० १९० । मं० ३ ॥

(धाता) परमेश्वर जैसे पूर्व कल्प में सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि को बनाता था वैसे ही [उसने] अब बनाये हैं और आगे भी वैसे ही बनावेगा। इसलिए परमेश्वर के काम बिना भूल-चूक से होने के सदा एक से ही हुआ करते हैं। जो अल्पज्ञ और जिसका ज्ञान वृद्धि क्षय को प्राप्त होता है उसी के काम में भूल-चूक होती है, ईश्वर के काम में नहीं।

प्रश्न—मनुष्य पहिले हुये या पृथ्वी?

उत्तर—पहिले पृथ्वी उत्पन्न हुई क्योंकि बिना पृथ्वी के मनुष्य किस प्रकार रहते।

प्रश्न—एक मनुष्य उत्पन्न हुआ या अनेक?

उत्तर—बहुत से स्त्री पुरुष उत्पन्न हुये।

प्रश्न—आदि सृष्टि में बच्चे उत्पन्न हुये या जवान?

उत्तर—ईश्वर निराकार है। यदि ईश्वर साकार होता तो इस संसार को भी न बना सकता। साकार होने से शक्ति परिमित हो जाती है। हम स्त्री पुरुष साकार है। हमारी आँखे देखने मे सहायक होती है। पर संसार मे बहुत से छोटे-छोटे कीडे है जिनके स्वरूप को हम आँखो से नही देख सकते। यह कीडे हमारी मुट्ठी मे से निकल भागते है और हम उनको पकड भी नही सकते। जब हमारी शक्तिया इतनी कम है तो त्रिसरेणु, अणु और परमाणु जिनसे यह जगत बना है उनको न तो देख ही सकते थे और न उनको मिला ही सकते थे। साकार होने से शक्तियाँ कितनी परिमित हो जाती है यह आपने समझ लिया होगा। यदि ईश्वर साकार हो करके जगत को बनाता तो वह भी जगत के बनाने मे इतना ही असमर्थ होता जितना कि हम लोग है। जगत के बनाने के लिये ईश्वर को त्रिसरेणु और अणुओं के अन्दर व्यापक होना आवश्यक था। वह अणुओं के अन्दर रहकर जिस अणु को जिस अणु से मिलाना चाहता है मिलाता रहता है और संसार रचता है। ईश्वर इसी प्रकार से जगत को बना रहा है।

प्रश्न—जैसे साकार माता-पिता से साकार बालक उत्पन्न होते है इसी प्रकार निराकार ईश्वर से निराकार जगत उत्पन्न होना चाहिये था?

उत्तर—आप समझी नहीं। आपका प्रश्न अज्ञानियो की भाँति है। ईश्वर संसार का निमित्त कारण है, वह केवल बनाने वाला है। जिस चीज़ से बनाता है वह प्रकृति है। प्रकृति स्थूल है इसलिये जो संसार बनाता है वह भी साकार है।

प्रश्न—क्या ईश्वर बिना कारण के कार्य नहीं कर सकता?

उत्तर—नहीं! जो चीज है नहीं उसका मानना व्यर्थ है। जब तक कारण न होगा तब तक कार्य नहीं हो सकता। बिना बादल आये वर्षा नहीं हो सकती, बिना पृथ्वी के अन्न नहीं उत्पन्न हो सकता, बिना माता-पिता के सन्तान नहीं उत्पन्न हो सकती।

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशमार्य्यावर्त्तं प्रचक्षते ॥२॥

मनु० (२ । २२ । १७)

उत्तर में हिमालय, दक्षिण मे विन्ध्याचल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र ॥१॥ तथा सरस्वती, पश्चिम मे अटक नदी, पूर्व मे दृषद्वती जो नैपाल के पूर्व भाग पहाड से निकल के बगाल के आसाम के पूर्व और ब्रह्मा के पश्चिम ओर होकर दक्षिण से समुद्र मे मिली है जिसको ब्रह्मपुत्रा कहते है और जो उत्तर के पहाडो से निकल के दक्षिण के समुद्र की खाडी मे अटक मिली है हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण और पहाडो के भीतर और रामेश्वर पर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने देश है उन सब को आर्य्यावर्त्त इसलिये कहते है कि यह आर्य्यावर्त्त देव अर्थात् विद्वानो ने बसाया और आर्यजनो के निवास करने से आर्य्यावर्त्त कहाया है ।

प्रश्न—जगत की उत्पत्ति को कितने वर्ष हुए ।

उत्तर—एक अरब छयानवे करोड कई सहस्र वर्ष ।

प्रश्न—पृथ्वी किस प्रकार बनी ?

उत्तर—अति सूक्ष्म टुकडा जो काटा नही जा सकता परमाणु कहलाता है । साठ परमाणुओ से एक अणु बनता है और दो अणु से द्वाणक बनता है यह स्थूल वायु है, तीन द्वाणक से अग्नि बनती है, चार द्वाणक से जल बनता है, पाच द्वाणक से पृथ्वी । इसी प्रकार से परमात्मा ने सब बनाये है ।

प्रश्न—पृथ्वी को कौन धारण किये है । कोई कहता है कि हजार फन वाले सांप के ऊपर पृथ्वी रहती है-और कोई कहता है बैल सींग पर आदि आदि ?

उत्तर—यदि पृथ्वी शेषनाग या बैल के सींग पर होती तो उनसे पूछना चाहिये कि उस सांप और बैल के जन्म लेने के पहिले किस पर थी और वह सांप और बैल किस पर खडे है । मुसलमान लोग यहीं चुप हो जायेंगे ।

उत्तर—जवान उत्पन्न हुये यदि बच्चे उत्पन्न होते तो उनका पालन कौन करता।

प्रश्न—सृष्टि का आरम्भ है या नहीं ?

उत्तर—नहीं। जैसे दिन के पहिले रात होती है और रात के पहिले दिन होता है इसी प्रकार सृष्टि के पहिले प्रलय और प्रलय के पहिले सृष्टि।

प्रश्न—ईश्वर ने किसी जीव को मनुष्य बनाया और किसी जीव को पशु, इसमें ईश्वर पक्षपाती सिद्ध होता है।

उत्तर—पक्षपाती बिलकुल नहीं यह तो ईश्वर ने कर्मानुसार किया। जिस जीव के कर्म श्रेष्ठ थे उसको मनुष्य और जिसके कर्म अच्छे न थे उसको पशु की योनि दी।

प्रश्न - सृष्टि पहिले पहल कहाँ हुई है ?

उत्तर—तिब्बत में।

प्रश्न—एक जाति उत्पन्न हुई या अनेक ?

प्रश्न-- एक मनुष्य जाति उत्पन्न हुई। उसके पश्चात् गुण कर्म के अनुसार आर्य और दस्यु दो नाम रक्खे गये। विद्वान् सदाचारी स्त्री पुरुष आर्य कहलाये और जो मूर्ख, डाकू तथा अत्याचार करने वाले थे वे दस्यु कहलाये। आर्य और दस्यु दोनों में युद्ध आरम्भ हुआ। आर्य लोग अपने परिवार के साथ आकर उत्तरी भारतवर्ष में बस गये। यह स्थान बड़ा रमणीक था और यहाँ की भूमि बडी उपजाऊ थी। इस देश को उन्होंने आर्यावर्त्त नाम से पुकारा।

प्रश्न आर्यावर्त्त की सीमा कहाँ तक है ?

उत्तर

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥१॥

वृष्टि या किरण द्वारा अमृत का प्रवेश और सब मूर्तिमान द्रव्यों को दिखाता हुआ सब लोकों के साथ आकर्षण गुण से यह वर्त्तमान, अपनी परिधि में घूमता रहता है किन्तु किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता। वैसे ही एक एक ब्रह्माण्ड में एक सूर्य प्रकाशक और दूसरे सब लोक लोकान्तर प्रकाश्य हैं। जैसे—

दिवि सोमो अधिश्रितः ॥

अथ० का० १४। अनु १। मं० १॥

जैसे यह चन्द्रलोक सूर्य से प्रकाशित होता है वैसे ही पृथिव्यादि लोक भी सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं। परन्तु रात और दिन सर्वदा वर्त्तमान रहते हैं क्योंकि पृथिव्यादि लोक घूम कर जितना भाग सूर्य के सामने आता है उतने में दिन और जितना पृष्ठ में अर्थात् आड़ में होता जाता है उतने में रात। अर्थात् उदय, अस्त, सन्ध्या, मध्याह्न, मध्यरात्रि आदि जितने कालावयव हैं वे देश देशान्तरों में सदा वर्त्तमान रहते हैं। अर्थात् जब आर्य्यावर्त्त में सूर्योदय होता है उस समय पाताल अर्थात् 'अमेरिका' में अस्त होता है और जब आर्य्यावर्त्त में अस्त होता है तब पाताल देश में उदय होता है। जब आर्य्यावर्त्त में मध्यदिन वा मध्यरात्रि है उसी समय पाताल देश में मध्यरात और मध्यदिन रहता है। जो लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता और पृथिवी नहीं घूमती वे सब अज्ञ हैं क्योंकि जो ऐसा होता तो कई सहस्र वर्ष के दिन और रात होते अर्थात् सूर्य का नाम (ब्रध्नः) पृथिवी से लाखगुना बड़ा और क्रोड़ों कोश दूर है। जैसे राई के सामने पहाड़ घूमे तो बहुत देर लगती और राई के घूमने में बहुत समय नहीं लगता वैसे पृथिवी के घूमने से यथायोग्य दिन रात होता है, सूर्य के घूमने से यथायोग्य दिन रात होता है, सूर्य के घूमने से नहीं। और जो सूर्य को स्थिर कहते हैं वे भी ज्योतिर्विद्यावित् नहीं। क्योंकि यदि सूर्य न घूमता होता तो एक राशि स्थान से दूसरी राशि अर्थात् स्थान को प्राप्त न होता। और

परन्तु साँप के फन पर मानने वाले कहेंगे कि साँप कछुवे पर है, कछुवा जल पर है, और जल आग पर है, आग वायु आकाश पर है उससे यही पूछना चाहिये कि ये सब किस पर खड़े हैं। सब यही कहेंगे कि ईश्वर पर।

यह सब बातें कपोल कल्पित बना ली गई है। सम्पूर्ण जगत, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि को ईश्वर धारण कर रहा है और एक लोक दूसरे लोक को बराबर आकर्षित कर रहा है इसलिये जो लोक जहाँ है वह वहीं पर ठहरा हुआ है।

प्रश्न—पृथ्वी आदि लोक घूमते हैं या नहीं?

उत्तर—घूमते हैं।

प्रश्न—कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता है और पृथ्वी नहीं घूमती। दूसरे कहते कि पृथ्वी घूमती है सूर्य नहीं घूमता। इसमे सत्य क्या माना जाय?

उत्तर—ये दोनों आधे झूठे हैं क्योंकि वेद मे लिखा है कि—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदान्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः॥

यजु० अ० ३। म० ६॥

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इसलिये भूमि घूमा करती है॥

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

यजु० अ० ३३। म० ४३॥

जो सविता अर्थात् सूर्य वर्षादि का कर्त्ता, प्रकाशस्वरूप, तेजोमय, रमणीय स्वरूप के साथ वर्त्तमान, सब प्राणि, अप्राणियों में अमृतरूप

प्रश्न—जैसे इस देश में मनुष्यादि सृष्टि की आकृति अवयव है वैसे ही अन्य लोकों में भी होगी वा विपरीत ?

उत्तर—कुछ कुछ आकृति में भेद होना सम्भव है। जैसे इस देश में चीन, हवस और आर्य्यावर्त्त, यूरोप में अवयव और रङ्ग रूप आकृति का भी थोड़ा थोड़ा भेद होता है इसी प्रकार लोक लोकान्तरों में भी भेद होते हैं। परन्तु जिस जाति की जैसी सृष्टि इस देश में है वैसी जाति ही की सृष्टि अन्य लोकों में भी है। जिस जिस शरीर के प्रदेश में नेत्रादि अङ्ग हैं उसी प्रदेश में लोकान्तर में भी उसी जाति के अवयव भी वैसे ही होते हैं क्योंकि—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥

ऋ० मं० १० । सू० १९० ॥

(धाता) परमात्मा ने जिस प्रकार के सूर्य, चन्द्र, द्यौ, भूमि अन्तरिक्ष और तत्रस्थ सुख विशेष पदार्थ पूर्व कल्प में रचे थे वैसे ही इस कल्प अर्थात् इस सृष्टि में रचे हैं तथा सब लोक लोकान्तर भी बनाये गये हैं। भेद किंचिन्मात्र नहीं होता।

प्रश्न—जिन वेदों का इस लोक में प्रकाश है उन्हीं का उन लोकों में भी प्रकाश है वा नहीं ?

उत्तर—उन्हीं का है। जैसे एक राजा की राज्य व्यवस्था नीति सब देशों में समान होती है उसी प्रकार परमात्मा राजराजेश्वर की वेदोक्त नीति अपने अपने सृष्टिरूप सब राज्य में एक सी है।

प्रश्न—जब ये जीव और प्रकृतिस्थ तत्त्व अनादि और ईश्वर के बनाये नहीं हैं तो ईश्वर का अधिकार इन पर न होना चाहिये क्योंकि सब स्वतन्त्र हुए ?

उत्तर—जैसे राजा और प्रजा समकाल में होते हैं और राजा के आधीन प्रजा होती है वैसे ही परमेश्वर के आधीन जीव और जड़ पदार्थ हैं। जब

गुरु पदार्थ विना घूमे आकाश मे नियत स्थान पर कभी नही रह सकता। और जो जैनी कहते हैं कि पृथिवी घूमती नहीं किन्तु नीचे चली जाती है और दो सूर्य और दो चन्द्र केवल जंबू द्वीप मे बतलाते है वे तो गहरी भाँग के नशे मे निमग्न है, क्यो ? जो नीचे नीचे चली जाती तो चारो ओर वायु के चक्र न बनने से पृथिवी छिन्न भिन्न होती और निम्नस्थलो मे रहने वालो को वायु का स्पर्श न होता नीचे वालो को अधिक होता और एक सी वायु की गति होती, दो सूर्य चन्द्र होते तो रात और कृष्णपक्ष का होना ही नष्ट भ्रष्ट होता। इसलिये एक भूमि के पास एक चन्द्र और अनेक भूमियों के मध्य मे एक सूर्य रहता है।

प्रश्न—सूर्य चन्द्र और तारे क्या वस्तु है और उनमे मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं ?

उत्तर—ये सब भूगोल लोक और इनमे मनुष्यादि प्रजा भी रहती हैं क्योंकि—

एतेषु हीदꣳसर्वं वसु हितमेते हीदꣳसर्वं वासयन्ते तद्यदिदꣳसर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति ॥

शत० का० १४। [प्र० ६। ब्रा० ७ कं० ४]

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इनका वसु नाम इसलिये है कि इन्हीं मे सब पदार्थ और प्रजा बसती है और ये ही सब को बसाते है। जिसलिये वास के, निवास करने के घर है इसलिये इनका नाम वसु है। जब पृथिवी के समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वसु है पश्चात् उनमे उसी प्रकार प्रजा के होने मे क्या सन्देह ? और जैसे परमेश्वर का यह छोटा सा लोक मनुष्यादि सृष्टि से भरा हुआ है तो क्या यह सब लोक शून्य होंगे ? परमेश्वर का कोई भी काम निष्प्रयोजन नहीं होता तो क्या इतने असंख्य लोकों मे मनुष्यादि सृष्टि न हो तो सफल कभी हो सकता है ? इसलिये सर्वत्र मनुष्यादि सृष्टि है।

२—जो मनुष्य अपवित्र है उसको पवित्र मानना जैसे चोरी व्यभिचार इत्यादि कर्म या गंदी वस्तु पवित्र मानना।

३—दुख को सुख मानना जैसे विषय भोग से जो कि दुख के कारण है उनको सुख देने वाला समझना और सदा उसी में लगे रहना।

४—अनात्मा में आत्म बुद्धि करना।

विद्या क्या है?

जो अविद्या नहीं है वही विद्या कहाती है अर्थात् अनित्य को अनित्य मानना, नित्य को नित्य मानना, अपवित्र को अपवित्र मानना, पवित्र को पवित्र मानना, दुख को दुख मानना, अनात्म को अनात्म मानना और आत्मा को आत्मा मानना।

मुक्ति के लिये पवित्र कर्म, पवित्र उपासना और पवित्र ज्ञान की आवश्यकता होती है इसलिये जिन स्त्री पुरुषों को मुक्ति की इच्छा हो वे विद्या की उपासना करें।

मुक्ति किसको नहीं मिलती ?

मुक्ति उस जीव को नहीं मिलती जो बद्ध है। बद्ध के अर्थ है बँधा हुआ। जो मनुष्य अधर्म या अज्ञान में फँसा है वह बद्ध है।

प्रश्न—मुक्ति किसको कहते हैं ?

उत्तर—जिससे छूट जाय उसका नाम मुक्ति है।

प्रश्न—किससे छूट जाना ?

उत्तर—जिससे छूटने की इच्छा सर्व जीव करते हैं।

प्रश्न—किससे छूटना चाहते हैं ?

उत्तर—दुख से। उससे छूट कर सुख को प्राप्त होते हैं और ब्रह्म में रहते हैं।

परमेश्वर सब सृष्टि का बनाने, जीवों के कर्मफलों के देने, सब का यथावत् रक्षक और अनन्त सामर्थ्य वाला है तो अल्प सामर्थ्य भी जड़ पदार्थ उसके आधीन क्यों न हों? इसलिये जीव कर्म करने में स्वतन्त्र परन्तु कर्मों के फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र है, वैसे ही सर्व शक्तिमान् सृष्टि, संहार और पालन सब विश्व का करता है।

नवाँ समुल्लास

विद्या अविद्या, बन्धन और मोक्ष का वर्णन

विद्यां चाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳसह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते

यजु. ॥ अ० ४० । मं० १४ ॥

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है।

जो मनुष्य या स्त्री संसार के बन्धनों से मुक्त होना चाहते हैं। उनको विद्या और अविद्या का ज्ञान होना परम आवश्यक है।

अविद्या के लक्षण

पातञ्जलि के अनुसार अविद्या चार प्रकार की होती है।

१—जो वस्तु अनित्य है उसको नित्य मानना जैसे यह मानना कि यह शरीर सदा रहेगा या यह संसार इसी प्रकार सदा बना रहेगा।

जीव की सामर्थ्य और साधन परिमित है उसका फल भी अनन्त नही होता। यदि जीव मुक्त अवस्था से लौट कर न आया करता तो एक ऐसा समय आ जाता जब कि जगत मे एक जीव भी न रह जाता।

प्रश्न—जितने जीव मुक्त हो जाते है उतने ईश्वर पुनः उत्पन्न कर लेता ?

उत्तर—ईश्वर जीव को बनाता नहीं। यदि ईश्वर जीव को बनाने लगे तो जीव की मृत्यु भी होनी सभव होगी क्योंकि जो जन्म लेता है उसका मरण होना परमावश्यक है इसलिये ऐसी बातें कहना ठीक नही।

प्रश्न—यदि मुक्ति के बाद भी लौट आता है तो फिर इतना प्रयत्न करना व्यर्थ है ?

उत्तर—नहीं ऐसी बात नहीं। जितने समय मे एक जीव छत्तीस हजार बार जन्म लेता मरता है उतने काल तक जीव आनन्द भोगता है।

मुक्ति का रूप

भिन्न भिन्न धर्मो मे मुक्ति के भिन्न भिन्न रूप बतलाये गये है। लोगों ने अपनी कल्पना का सहारा लेकर बहुत सी मन गढ़न्त बाते बनालीं। जैनी लोग मानते है कि मोक्ष शिला पर जाकर आनन्द भोगेंगे। ईसाई मानते है कि चौथे आसमान पर स्वर्ग लोक बना हुआ है वहाँ विवाह, अनेक प्रकार के सुन्दर वस्त्र आदि आदि सामग्री मिलेगी। इसी प्रकार मुसलमान सातवे आकाश पर, वाममार्गी श्रीपुर मे, शैव लोग कैलाश पर्वत पर, वैष्णव लोग वैकुण्ठ, गोकुलीय गोसाई लोग मे ईश्वर का होना मानते है। इन सब स्थानो पर जो सुख इस ससार मे मनुष्य और स्त्री मानते है उन सब की कल्पना लोगो ने करली है। यह सब भोले भाले स्त्री पुरुषो के फँसाने के लिये प्रयत्न किया है। उन लोगो से पूछना चाहिये कि ऐसे स्थानों मे जीव को मुक्ति ही क्या मिली, क्योंकि मुक्त अवस्था मे जीव स्वतन्त्र रूप जहाँ चाहे विचरे। परन्तु यहाँ तो जीव को बन्धन मे डाल दिया गया।

प्रश्न—मुक्ति किन बातों से होती है ?

उत्तर—परमेश्वर की आज्ञा मानने, अधर्म अविद्या, कुसंग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्य भाषण, परोपकार विद्या पक्षपात रहित, न्याय धर्म की वृद्धि करने परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने आदि से मुक्ति मिलती है।

प्रश्न—मुक्ति के बाद जीव कहाँ रहता है ?

उत्तर—ब्रह्म में।

प्रश्न—जीव किसी स्थान विशेष में रहता है या स्वतंत्रता पूर्वक इधर-उधर घूमा करता है ?

उत्तर—वह ब्रह्म में अपनी इच्छानुसार सब जगह भ्रमण करता रहता है।

प्रश्न—मुक्त जीव का स्थूल शरीर होता है या नहीं ? यदि नहीं होता तो वह किस प्रकार आनन्द सुख भोग सकता है।

उत्तर—मुक्त जीव के स्थूल शरीर नहीं रहता परन्तु उसके स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं। इस अवस्था में उसके गोलक नहीं होते परन्तु जब सुनना चाहता है, गंध लेना चाहता है या किसी वस्तु का स्वाद लेना चाहता है तो उस समय अपनी शक्ति से उन सुखों का अनुभव करता है।

प्रश्न—क्या जीव मुक्त होने के बाद फिर जन्म के बन्धन में आता है या नहीं ?

उत्तर—वेदादि शास्त्रों में लिखा है कि जीव कुछ काल के बाद आनन्द भोग करके पुनः जन्म लेता है। उसका समय तैंतालीस लाख बीस सहस्त्र वर्षों की एक चतुरयुगी, दो सहस्त्र चतुर युगी की एक अहोरात्रि, ऐसी तीस रात्रियों का एक मास, ऐसे बारह मासों का एक वर्ष और ऐसे सौ वर्षों तक जीव मुक्ति का फल भोगता है।

काम सौंप दिया गया पूर्व जन्म में उसको एक सुन्दर शरीर दिया गया था और इस जन्म में उसको लंगड़ी और लूली बनाया तो उसका जीवन कितना कठिन हो जाता, इसलिये ईश्वर ने यह बड़ी कृपा की कि हमको विस्मृति की शक्ति दी।

प्रश्न—जिस प्रकार एक माली जिस पेड़ को जहाँ चाहता है लगा देता है और जिस पेड़ को जब चाहता काट डालता है इसी प्रकार से ईश्वर करता होगा।

उत्तर—ईश्वर ऐसा नहीं कर सकता। यदि ईश्वर ऐसा करे तो उस पर दोषारोपण किया जा सकता है क्योंकि वह अन्यायी हो जायेगा। ईश्वर तो जो कुछ कार्य करता है उसके दोष गुण और न्याय अन्याय को विचार कर करता है, इसलिये माली वाली बात ईश्वर के लिये नहीं घट सकती।

प्रश्न—ईश्वर जितना देना चाहता है वह दे देता है और जितना सुखी बनाना चाहता है उतना सुख दे देता है?

उत्तर—नहीं ऐसा नहीं है। आप जैसा कार्य करेंगी उसका फल आपको अवश्य मिलेगा। यदि आप अच्छे कर्म करेंगी तो उसका फल आपको अवश्य मिलेगा। यदि बुरा कर्म करेंगी तो आपको दुःख भोगना पड़ेगा। सुख और दुःख आपके हाथ में है, ईश्वर के हाथ में नहीं। क्योंकि ईश्वर तो केवल कर्मों का फल देने वाला है, और कुछ नहीं।

प्रश्न—बड़े छोटों को एक सा सुख होता है। रानी और दासी दोनों को ही अपनी अपनी चिन्तायें होती हैं बल्कि रानी को कहीं अधिक। दासी रूखे सूखे भोजन को खाकर पृथ्वी पर सुख की नींद सो लेती है और रानी को बढ़िया भोजनों और गलीचों पर भी निद्रा नहीं आती फिर हम सुख के लिये क्यों प्रयत्न करें?

उत्तर—नहीं ऐसी बात नहीं। रानी के सुख और दासी के सुख में बड़ा अन्तर है। रानी से यदि कहा जाय कि दासी बन जाओ तो वह ऐसा बनना

अर्थात् वह स्वर्गलोक में बन्द रहेगा। उसको बाहर विचरण करने की आज्ञा नहीं। इसके अतिरिक्त इन्द्रिय भोगों के सुखों में कोई आनन्द भी नहीं। इनसे रोग हो जाना स्वाभाविक ही है। जब स्त्री पुरुष भोग करेंगे तो वहाँ भी सन्तानोत्पत्ति आदि के दुःख दोनों को भुगतने पड़ेंगे। जब मनुष्य युवक और स्त्रियाँ युवती होंगी तो एक अवस्था ऐसी भी आयेगी कि जब वह वृद्ध होंगे। क्योंकि शरीर का ह्रास होना आवश्यक है ही। जितने शारीरिक क्लेश हैं वह जीव को भुगतने पड़ेंगे। क्योंकि शरीर में रोगादि होना स्वाभाविक है। जिस प्रकार इस लोक में जीव दुख से कराहते रहते हैं उसी प्रकार स्वर्गलोक में भी जीवों की वही दशा रहेगी। ऐसे स्वर्गलोक और हमारे लोक में कोई भी अन्तर न रहेगा। इसलिये जैसी मुक्ति यह लोग मानते हैं उसको नहीं मानना चाहिये।

प्रश्न—जन्म एक है वा अनेक हैं?

उत्तर—अनेक हैं।

प्रश्न—जो जन्म अनेक हैं तो पूर्व जन्म और मृत्यु की बातों का स्मरण क्यों नहीं रहता?

उत्तर—जीव अल्पज्ञ है, वह त्रिकालदर्शी नहीं।। इसलिये उसको पहिले जन्म की बात याद नहीं रहती। पहिले जन्म की बात याद रखना तो बहुत दूर है मनुष्य इस जन्म की भी बात याद नहीं रख सकता। पूर्व जन्म की बात तो दूर रही जीव यह भी नहीं जानता कि गर्भ में वह किस प्रकार रहा और बालकपन की बहुत सी बातें वृद्ध होने पर याद नहीं रहती। कोई आप से पूछे कि आपने १५ जनवरी सन् १९१८ को क्या खाया तो आप यह बता न सकेंगी। ईश्वर ने जीव के ऊपर यह बहुत बड़ी कृपा की, कि उसको पूर्व जन्म की बातों का स्मरण नहीं रहता। यदि कहीं स्मरण रहता तो मनुष्य का जीवन बड़ा भारी हो जाता। जब जब वह विचार करता कि पूर्व जन्म में वह एक रानी थी और इस जन्म में एक दासी का

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।

मुण्डक [मु० २ । ख० २ । मं० ८]

अब इस जीव के हृदय की अविद्या अज्ञानरूपी गांठ कट जाती, सब संशय छिन्न होते और दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं तभी परमात्मा जो कि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है, उसमें निवास करता है।

जब यह अवस्था प्राप्त हो जाती है तो जीव की मुक्ति हो जाती है।

जीव क्या है ?

जीव के विषय में भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के भिन्न भिन्न विचार हैं। नवीन वेदान्ती लोग जीव की सत्ता नहीं मानते। वह समझते हैं कि जीव ब्रह्म ही है इसलिये ब्रह्म होने के कारण उसका जन्म मरण तथा मुक्ति नहीं मानते। परन्तु यह बात सत्य नहीं है।

दसवां समुल्लास

आचार अनाचार, भक्ष्य और अभक्ष्य का वर्णन

विद्वान्, स्त्री तथा पुरुषों को योग्य है कि वह सदा धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करें। जिसका सेवन राग द्वेष रहित विद्वान् तथा विदुषी स्त्रियाँ करती हैं जो वेद शास्त्र आदि पुस्तकों के अनुकूल हो, जिसके करने में भय लज्जा आदि न होवे और जो अपनी बुद्धि के अनुसार यथोचित मालूम पड़े उसको ही करना चाहिये। प्रत्येक स्त्री का कर्तव्य है कि चित्त और इन्द्रियाँ

स्वीकार नहीं करेगी और यदि दासी से कहा जाय कि तुम रानी बनोगी तो वह बहुत शीघ्र तैयार हो जायगी। जब रानी उत्पन्न हुई थी तो उसका स्नान सुगन्धित जल से किया गया था और जब दासी उत्पन्न हुई तो उसके घर मे खाने भर को भी नहीं था परन्तु रानी के लिये हजारो प्रकार के व्यञ्जन तैयार थे। प्रत्येक स्त्री पुरुष का कर्तव्य है कि वह सदा पुण्य करता रहे क्योंकि पाप करने से दुःख और पुण्य करने से सुख होता है। यदि ससार मे सब जीवो को समान सुख होता तो कोई भी पुण्य कार्यो के करने का यत्न न करता।

प्रश्न—क्या मनुष्यो के जीव भिन्न है और पशुओ के भिन्न ?

उत्तर—जीव सब एक से होते है। मनुष्य और पशु का जीव एक ही होता है भिन्न नहीं ?

प्रश्न—यह किस प्रकार ?

उत्तर—यह सब कर्मो का फल है। जो जीव अच्छे कर्म करता है वह विदुषी स्त्री या रानी का शरीर धारण करता है, जो उससे कम पुण्य करता है वह साधारण स्त्री के रूप मे उत्पन्न होता है और यदि कुकर्म करता है तो उसको पशुओं की योनि मिलती है। निकृष्ट कर्म करने पर कीट पतंग आदि योनियो मे उसका जन्म होता है। मनुष्य योनि सब से उत्कृष्ट योनि है और बहुत उत्कृष्ट कर्म करने पर जीव को यह योनि प्राप्त होती है। जीव ईश्वर की प्रेरणा से, वायु अन्न जल अथवा शरीर के छेदो के द्वारा पुरुष के वीर्य के द्वारा स्त्री के शरीर मे प्रवेश करता है। और वहाँ पर उसका शरीर बनता है।

प्रश्न—मुक्ति एक जन्म मे होती है या अनेक जन्मो मे ?

उत्तर—इसके लिये नियम नहीं। यह जीव की सामर्थ्य और उसके परिश्रम पर निर्भर है। मुक्ति उसी समय होती है जब कि -

प्रथम मेरु अर्थात् हिमालय से ईशान, उत्तर और वायव्य [कोण] में जो देश बसते हैं उनका नाम हरिवर्ष था अर्थात् हरि कहते हैं बन्दर को। उस देश के मनुष्य अब भी रक्तमुख अर्थात् वानर के समान भूरे नेत्रवाले होते हैं। जिन देशों का नाम इस समय 'यूरोप' है उन्हीं को संस्कृत में 'हरिवर्ष' कहते थे, उन देशों को देखते हुए और जिनको हूण, 'यहूदी' भी कहते हैं उन देशों को देख कर चीन में आये, चीन से हिमालय और हिमालय से मिथिलापुरी को आये। और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन पाताल में अश्वतरी अर्थात् जिसको अग्नियान-नौका कहते हैं उस पर बैठ के पाताल में जाके, महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ में उद्दालक ऋषि को ले आये थे। धृतराष्ट्र का विवाह गान्धार जिसको 'कंधार' कहते हैं वहाँ की राजपुत्री से हुआ। माद्री पाण्डु की स्त्री 'ईरान' की कन्या थी। और अर्जुन का विवाह पाताल में जिसको 'अमेरिका' कहते हैं वहाँ के राजा की लड़की उलोपी के साथ हुआ था। जो देश देशान्तर, द्वीप द्वीपान्तर में न जाते होते तो ये सब बातें क्यों कर हो सकतीं ? मनुस्मृति में जो समुद्र में जानेवाली नौका पार कर लेना लिखा है वह भी आर्य्यावर्त्त से द्वीपान्तर में जाने के कारण है। और जब राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था उसमें सब भूगोल के राजाओं को बुलाने को निमन्त्रण देने के लिये भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारों दिशाओं में गये थे। जो दोष मानते होते तो कभी न जाते। सो प्रथम आर्य्यावर्त्तदेशीय लोग व्यापार राजकार्य्य और भ्रमण के लिये सब भूगोल में घूमते थे। और जो आजकल छूतछात और धर्म नष्ट होने की शंका है वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है। जो मनुष्य देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में जाने आने में शङ्का नहीं करते वे देशदेशान्तर के अनेकविध मनुष्यों के समागम, रीति-भाँति देखने, अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय, शूरवीर होने लगते और अच्छे व्यवहार का ग्रहण, बुरी बातों के छोड़ने में तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला जो महाभ्रष्ट, म्लेच्छकुलोत्पन्न वेश्या आदि के समागम से आचार भ्रष्ट धर्महीन

जो विषयों की ओर भागती है उनको रोकने का यत्न करे। जिस प्रकार एक सारथी घोड़े को रोक करके उचित मार्ग पर चलाता है उसी प्रकार स्त्रियों को चाहिये कि वह इन्द्रियों पर शासन करके उनको धर्म के मार्ग पर लगावे। जब तक इन्द्रियाँ विषय भोग में फँसी रहती हैं तब तक मनुष्य को सुख नहीं मिलता और जब इन्द्रियों को दमन कर लिया जाता है तभी अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति होती है। आग में घी और ईंधन डालने से आग घटती नहीं बल्कि और बढ़ती जाती है, इसी प्रकार जितना प्राणी विषयों की ओर दौड़ता है उतना ही अधिक फँसता जाता है। जितेन्द्रिय न होने के कारण न वेद का ज्ञान हो सकता है और न त्याग हो सकता है और न यज्ञ, न नियमानु धर्माचरण। किसी बात को यह निश्चय करने के लिये कि यह आचार है या अनाचार उसका भली प्रकार से विचार कर लेना आवश्यक है।

देश के बाहर जाने में अधर्म

प्रश्न—क्या आर्यावर्त देश से बाहर जाने में धर्म भ्रष्ट हो जाता है?

उत्तर—यह सब मिथ्या पाखण्ड है। सत्य भाषणादि आचरण करना, सदा पवित्र रहना, जिस स्थान पर भी किया जायगा वहीं पर रहते हुये मनुष्य धार्मिक जीवन व्यतीत कर सकता है, यह मानना कि आर्यावर्त देश में रहने से ही मनुष्य पवित्र हो सकता है और बाहर रह कर पवित्र नहीं रह सकता ऐसी बातों को कभी भी मानना नहीं चाहिये। प्राचीन काल में आर्यावर्त से बाहर स्त्री पुरुष सदा जाया करते थे और उनका आपस में बराबर सम्बन्ध रहता था। महाभारत के शान्ति पर्व में व्यासशुक के नाम से एक कथा आई है। व्यास जी अपने पुत्र शुक के साथ पाताल लोक में रहते थे।

शुक्राचार्य्य ने पिता से एक प्रश्न पूछा कि आत्मविद्या इतनी ही है या अधिक? व्यास जी ने अपने पुत्र शुक से कहा कि हे पुत्र! तू मिथिलापुरी में जाकर यही प्रश्न जनक राजा से कर, वह इसका यथायोग्य उत्तर देगा। पिता का वचन सुनकर शुक्राचार्य्य पाताल से मिथिलापुरी की ओर चले।

किया है कि जो राजपुरुषों में युद्ध समय में भी चौका लगाकर रसोई बना के खाना अवश्य पराजय का हेतु है ? किन्तु क्षत्रिय लोगों का युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते, जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओं को घोड़े हाथी रथ पर चढ़ या पैदल होके मारते जाना अपना विजय करना ही आचार और और पराजित होना अनाचार है। इसी मूढ़ता से इन लोगों में चौका लगाते लगाते, विरोध करते कराते सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगाकर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पकाकर खावें। परन्तु वैसा न होने पर जानो सब आर्य्यावर्त्त देश में चौका लगा के सर्वथा नष्ट कर दिया है। हाँ जहाँ भोजन करें उस स्थान को धोने, लेपन करने, झाड़ू लगाने, कूरा कर्कट दूर करने में प्रयत्न अवश्य करना चाहिये न कि मुसलमान वा ईसाइयों के समान भ्रष्ट पाकशाला करना।

किसके हाथ का खावे ?

प्रश्न—सखरी निखरी क्या है ?

उत्तर—सखरी जो जल आदि में अन्न पकाये जाते और जो घी दूध में पकाते हैं वह निखरी अर्थात् चोखी। वह भी इन धूर्तों का चलाया हुआ पाखण्ड है क्योंकि जिसमें घी दूध अधिक लगे उसको खाने में स्वाद और उदर में चिकना पदार्थ अधिक जावे इसीलिये यह प्रपञ्च रचा है। नहीं अग्नि वा काल से पका हुआ पदार्थ पक्का और न पका हुआ कच्चा है। जो पक्का खाना और कच्चा न खाना है यह भी सर्वत्र ठीक नहीं क्योंकि चणे आदि कच्चे भी खाये जाते हैं।

प्रश्न—द्विज अपने हाथ से रसोई बना के खावें वा शूद्र के हाथ की बनाई खावें ?

उत्तर—शूद्र के हाथ की बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्यपालन और पशुपालन खेती व्यापार के

नहीं होते किन्तु देशदेशान्तर के उत्तम पुरुषों के साथ समागम में छूत और दोष मानते!!! यह केवल मूर्खता की बात नहीं तो क्या है? हां इतना कारण तो है कि जो लोग मांस भक्षण और मद्यपान करते हैं उनके शरीर और वीर्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं इसलिये उनके सङ्ग करने से आर्यों को भी कुलक्षण न लग जावे यह तो ठीक है। परन्तु जब इनसे व्यवहार और गुण ग्रहण करने में कोई भी दोष वा पाप नहीं है, किन्तु उनके मद्यपानादि दोषों को छोड़ गुणों को ग्रहण करें तो कुछ भी हानि नहीं। जब इनके स्पर्श और देखने से भी मूर्ख जन पाप गिनते हैं इसी से उनसे युद्ध कभी नहीं कर सकते क्योंकि युद्ध में उनको देखना और स्पर्श होना अवश्य है। सज्जन लोगों को राग द्वेष, अन्याय, मिथ्याभाषणादि दोषों को छोड़ निर्वैर प्रीति, परोपकार सज्जनतादि का धारण करना उत्तम आचार है। और यह भी समझ लें कि धर्म हमारे आत्मा और कर्त्तव्य के साथ है। जब हम अच्छे काम करते हैं तो हमको देशदेशान्तर द्वीपद्वीपान्तर जाने में कुछ भी दोष नहीं लग सकता। दोष तो पाप के काम करने में लगता है। हाँ इतना अवश्य चाहिये कि वेदोक्त धर्म का निश्चय और पाखण्डमत का खण्डन करना अवश्य सीख लें जिससे कोई हमको झूठा निश्चय न करा सके।

क्या विना देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में राज्य या व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है? जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार या राज्य करें तो विना दारिद्र्य और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। पाखण्डी लोग यह समझते हैं कि जो हम इनको विद्या पढ़ावेंगे और देशदेशान्तर में जाने की आज्ञा देवेंगे तो ये बुद्धिमान् होकर हमारे पाखण्ड जाल में न फँसने से हमारी प्रतिष्ठा और जीविका नष्ट हो जावेगी इसीलिये भोजन छादन में बखेड़ा डालते हैं कि वे दूसरे देश में न जा सकें। हां इतना अवश्य चाहिये कि मद्यमांस का ग्रहण कदापि भूलकर भी न करें। क्या सब बुद्धिमानों ने यह निश्चय नहीं

प्रश्न—फल, मूल, कन्द और रस इत्यादि अदृष्ट में दोष नहीं मानते।

उत्तर—वाह जी वाह ! सत्य है कि जो ऐसा उत्तर न देते तो क्या धूल राख खाते, गुड़ शक्कर मीठी लगती, दूध घी पुष्टि करता है इसीलिये यह मतलब सिन्धु क्या नहीं रचा है। अच्छा जो अदृष्ट में दोष नहीं तो भंगी वा मुसलमान अपने हाथों से दूसरे स्थान में बनाकर तुमको आके देवे तो खालोगे वा नहीं ! जो कहो कि नहीं तो अदृष्ट में भी दोष है। हाँ मुसलमान, ईसाई आदि मद्य मांसाहारियों के हाथ के खाने में आर्यों को मद्य मांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पड़ता है परन्तु आपस में आर्यों का एक भोजन होने में कोई भी दोष नहीं दीखता। जब तक एक मत, एक हानि लाभ, एक सुख दुःख परस्पर न मानें तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है परन्तु केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते तब तक बढ़ती के बदले हानि होती है। विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेदविद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पांच सहस्र वर्ष के पहिले हुई थीं उनको भी भूल गये ? देखो ! महाभारत युद्ध में सब लोग लड़ाई में सवारियों पर खाते पीते थे, आपस की फूट से कौरव पांडव और यादवों का सत्यनाश हो गया सो तो हो गया परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है, न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःखसागर में डुबा मारेगा ? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे, स्वदेशविनाशक, नीच के दुष्टमार्ग में आर्य लोग अब तक भी चल कर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय।

काम में तत्पर रहें और शूद्र के पात्र तथा उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के बिना न खावे सुनो प्रमाण—

आर्याधिष्ठाता वा शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः ॥

[आपस्तम्ब धर्मसूत्र । प्रपाठक २ । पटल २ । खण्ड २। सूत्र ४]

यह आपस्तम्ब का सूत्र है। आर्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री पुरुष पाकादि सेवा करें परन्तु वे शरीर वस्त्र आदि से पवित्र रहें। आर्यों के घर में जब रसोई बनावें तब मुख बांध के बनावें क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वास भी अन्न में न पड़े। आठवें दिन क्षौर, नखच्छेदन करावें, स्नान करके पाक बनाया करें, आर्यों को खिला के आप खावें।

प्रश्न—शूद्र के छुए हुये पके अन्न के खाने में जब दोष लगाते हैं तो उसके हाथ का बनाया कैसे खा सकते हैं ?

उत्तर—यह बात कपोल कल्पित झूठी है क्योंकि जिन्होंने गुड़, चीनी, घृत, दूध, पिशान, शाक, फल, मूल खाया उन्होंने जानो सब जगत् भर के हाथ का बनाया और उच्छिष्ट खालिया क्योंकि जब शूद्र चमार, भङ्गी, मुसलमान, ईसाई आदि लोग खेतों में से ईख को काटते छीलते, पीसकर रस निकालते हैं तब मलमूत्रोत्सर्ग करके उन्हीं विना धोये हाथों से छूते, उठाते, धरते, आधा साठा चूस रस पीके आधा उसी में डाल देते हैं और रस पकाते समय उस रस में रोटी भी पकाकर खाते हैं। जब चीनी बनाते हैं तब पुराने जूते कि जिसके तले में विष्ठा, मूत्र, गोबर धूली लगी रहती है उन्हीं जूतों से उसको रगड़ते हैं। दूध में अपने घर के उच्छिष्ट पात्रों का जल डालते, उसी में घृतादि रखते और आटा पीसते समय भी वैसे ही उच्छिष्ट हाथों से उठाते और पसीना भी आटा में टपकता जाता है, इत्यादि, और फल मूल कंद में में भी ऐसी ही लीला होती है। जब इन पदार्थों को खाया जाय तो जानो सब के हाथ का खा लिया।

२४९६० (चौबीस सहस्र नौ सो साठ) मनुष्य एक वार में तृप्त हो सकते हैं। उसके छः बछियाँ छः बछड़े होते हैं उनमें से दो मर जायें तो भी दश रहे उनमें से पाँच बछड़ियों के जन्म भर के दूध को मिला कर १२४८०० (एक लाख चौबीस सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त हो सकते हैं। अब रहे पाँच बैल, वे जन्मभर में ५०००S (पाँच सहस्र) मन अन्न न्यून से न्यून उत्पन्न कर सकते हैं। उस अन्न में से प्रत्येक मनुष्य तीन पाव खावे तो अढाई लाख मनुष्यों को तृप्ति होती है। दूध और अन्न मिला ३७४८०० (तीन लाख चौहत्तर सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त होते हैं। दोनों संख्या मिला के एक गाय की एक पीढ़ी में ४७५६०० (चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ) मनुष्य एक वार पालित होते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ाकर लेखा करें तो असंख्यात मनुष्यों का पालन होता है। इसके भिन्न बैल गाड़ी सवारी भार उठाने आदि कर्मों से मनुष्यों के बड़े उपकारक होते हैं तथा गाय दूध अधिक उपकारक होती है और जैसे बैल उपकारक होते हैं वैसे भैंसे भी परन्तु गाय के दूध घी से जितने बुद्धि वृद्धि से लाभ होते हैं उतने भैंस के दूध से नहीं, इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है। और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा। बकरी के दूध से २५९२० (पच्चीस सहस्र नौसौ बीस) आदमियों का पालन होता है। वैसे हाथी, घोड़े, ऊँट, गधे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं।* इन पशुओं के मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा। देखो! जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे। आर्यावर्त्त वा अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणि वर्त्तते थे क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुये हैं तब से

---

*इसकी विशेष व्याख्या "गोकरुणानिधि" में की है।

भक्ष्य-अभक्ष्य

भक्ष्याभक्ष्य दो प्रकार का होता है एक धर्मशास्त्रोक्त दूसरा वैद्यक-शास्त्रोक्त, जैसे धर्मशास्त्र में—

अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च ॥

मनु [५ । ५]

द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों को भी मलीन विष्ठा मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुये शाक फल मूलादि न खाना।

वर्जयेन्मधुमांसं च ॥

[मनु० २। ११७]

जैसे अनेक प्रकार के मद्य, गांजा, भांग, अफीम आदि—

बुद्धि लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते ॥

(शार्ङ्गधर अ० ४ । श्लो० २१)

जो जो बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उनका सेवन कभी न करे और जितने अन्न सड़े, बिगड़े, दुर्गन्धादि से दूषित अच्छे प्रकार न बने हुये और मद्य मांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य मांस के परमाणुओं ही से पूरित है उनके हाथ का न खावे जिसमें उपकारक प्राणियों की हिंसा अर्थात् जैसे एक गाय के शरीर से दूध, घी बैल, गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ मनुष्यों को सुख पहुँचता है वैसे पशुओं को न मारे न मारने दे। जैसे किसी गाय से बीस सेर और किसी से दो सेर दूध प्रतिदिन होवे उसका मध्यभाग ग्यारह सेर प्रत्येक गाय से दूध होता है कोई अठारह और छः महीने तक दूध देती है उसका मध्य भाग बारह महीने हुये। अब प्रत्येक गाय के जन्म भर के दूध से

बिगड़ जाता है वैसे दूसरे के साथ खाने से भी कुछ बिगाड़ ही होता है सुधार नहीं, इसीलिये—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्नचोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्॥

मनु० [२ । ५६]

न किसी को अपना जूठा पदार्थ दे और न किसी के भोजन के बीच आप खावे, अधिक भोजन किये पश्चात् हाथ मुख धोये बिना कहीं इधर उधर जाय।

प्रश्न—"गुरोरुच्छिष्टभोजनम्" इस वाक्य का क्या अर्थ होगा ?

उत्तर—इसका यह अर्थ है कि गुरु के भोजन किये पश्चात् जो पृथक् अन्न शुद्ध स्थित है उसका भोजन करना अर्थात् गुरु को प्रथम भोजन कराके पश्चात् शिष्य को भोजन करना चाहिये।

प्रश्न—जो उच्छिष्टमात्र का निषेध है तो मक्खियों का उच्छिष्ट सहत बछड़े का उच्छिष्ट दूध और एक ग्रास खाने के पश्चात् अपना भी उच्छिष्ट होता है, पुनः उनको भी न खाना चाहिये।

उत्तर—सहत कथनमात्र ही उच्छिष्ट होता है, परन्तु वह बहुत सी ओषधियों का सार ग्राह्य, बछड़ा अपनी माँ के बाहिर का दूध पीता है भीतर के दूध को नहीं पी सकता इसलिये उच्छिष्ट नहीं, परन्तु बछड़े के पिये पश्चात् जल से उसकी माँ के स्तन धोकर शुद्ध पात्र में दोहना चाहिये। और अपना उच्छिष्ट अपने को विकारकारक नहीं होता। देखो! स्वभाव से यह बात सिद्ध है कि किसी का उच्छिष्ट कोई भी न खावे। जैसे अपने मुख, कान नाक, आंख उपस्थ और गुह्येन्द्रियों के मल मूत्रादि के स्पर्श में घृणा नहीं होती वैसे किसी दूसरे के मल मूत्र के स्पर्श में होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह व्यवहार सृष्टिक्रम से विपरीत नहीं है इसलिये मनुष्य मात्र को उचित है कि किसी का उच्छिष्ट अर्थात् जूठा न खाय।

क्रमश. आर्य्यो के दु.ख की बढती जाती जाती है। क्योंकि —

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम् ॥

[वृद्ध चाणक्य अ० १० । १३]

जब वृक्ष का मूल ही काट दिया जाय तो फल फूल कहाँ से हो ?

प्रश्न—जो सभी अहिंसक हो जायें तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ जायें कि सब गाय आदि पशुओं को मार खाय तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ हो जाय ?

उत्तर यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हो उनको दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त कर दें।

प्रश्न—फिर क्या उनका मांस फेंक दें ।

उत्तर—चाहे फेंक दे चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें वा जला देवे अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती, किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है, जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात छल कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोजनादि करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाश बुद्धि बल पराक्रम वृद्धि और आयुवृद्धि होवे उन तण्डुलादि, गोधूम, फल, मूल, कंद दूध, मिष्टादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले है उन उन का सर्वथा त्याग करना और जो जो जिसके लिये विहित है उन उन पदार्थ का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।

प्रश्न—एक साथ खाने में कुछ दोष है वा नहीं ?

उत्तर—दोष है, क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव प्रकृति नहीं मिलती। जैसे कुष्ठि आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर

के रहने से आते हैं। जो उसमें झाड़ू लेपनादि से शुद्धि प्रतिदिन न की जावे तो जानो पाखाने के समान वह स्थान हो जाता है इसलिये प्रतिदिन गोबर मिट्टी झाड़ू से धोकर शुद्ध रखना चाहिये। इनसे पूर्वोक्त दोषों की निवृत्ति हो जाती है। जैसे मियां जी के रसोई स्थान में कहीं कोयला, कहीं राख, कहीं लकड़ी कहीं फूटी हांडी, कहीं जूठी रकाबी, कहीं हाड़ गोड़ पड़े रहते हैं और मक्खियों का तो क्या कहना! वह स्थान ऐसा बुरा लगता है कि जो कोई श्रेष्ठ मनुष्य जाकर बैठे तो उसे वांत होने का भी सम्भव है और उस दुर्गन्ध-स्थान के समान ही वही स्थान दीखता है। भला जो कोई इनसे पूछे कि यदि गोबर से चौका लगाने से तो तुम दोष गिनते हो परन्तु चूल्हे में कंडे जलाने, उसकी आग से तमाकू पीने, घर की भीत पर लेपन करने आदि से मियाजी का भी चौका भ्रष्ट हो जाता होगा इसमें क्या सन्देह।

प्रश्न—चौके में बैठ के भोजन करना अच्छा वा बाहर बैठ के।

उत्तर—जहाँ पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान दीखे वहाँ भोजन करना चाहिये परन्तु आवश्यक युद्धादिकों में तो घोड़े आदि यानों पर बैठ के वा खड़े खड़े भी खाना पीना अत्यन्त उचित है।

प्रश्न—क्या अपने ही हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं।

उत्तर—जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावें तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं क्योंकि जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री पुरुष रसोई बनाने और चौका देने, वर्त्तन भांडे मांजने आदि बखेड़े में पड़े रहें तो विद्यादि शुभगुणों की वृद्धि कभी नहीं हो सके, देखो! महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा ऋषि महर्षि आये थे एक ही पाकशाला से भोजन किया करते थे। जब से ईसाई, मुसलमान आदि के मत मतान्तर चले आपस में वैर विरोध हुआ, उन्होंने मद्यपान गोमांसादि का खाना पीना स्वीकार किया उसी समय से भोजनादि में बखेड़ा हो गया। देखो! काबुल, कंधार, ईरान, अमेरिका, यूरोप आदि देशों के राजाओं की कन्या

प्रश्न—भला स्त्री पुरुष भी परस्पर उच्छिष्ट न खावें ?

उत्तर—नहीं। क्योंकि उनके भी शरीरों का स्वभाव भिन्न-भिन्न है।

प्रश्न—कहो जी मनुष्यमात्र के हाथ की की हुई रसोई के खाने में क्या दोष है ? क्योंकि ब्राह्मण से लेके चाण्डाल पर्यन्त के शरीर हाड मांस चमडे के हैं और जैसा रुधिर ब्राह्मण के शरीर में है वैसा ही चाण्डाल आदि के, पुनः मनुष्यमात्र के हाथ की पकी हुई रसोई के खाने में क्या दोष है ?

उत्तर—दोष है, क्योंकि जिन उत्तम पदार्थों के खाने पीने से ब्राह्मण और ब्राह्मणी के शरीर में दुर्गन्धादि दोषरहित रज वीर्य उत्पन्न होता है वैसा चाण्डाल और चाण्डाली के शरीर में नहीं क्योंकि चाण्डाल का दुर्गन्ध के परमाणुओं से भरा हुआ होता है, वैसा ब्राह्मणादि वर्णों का नहीं इसलिये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और चाण्डालादि नीच भंगी चमार आदि का न खाना। भला जब कोई तुम से पूछेगा कि जैसा चमड़े का शरीर माता, सास, बहिन, कन्या पुत्रवधू का है वैसा ही अपनी स्त्री का भी है तो क्या माता आदि स्त्रियों के साथ भी स्वस्त्री के समान वर्तोगे ? तब तुम को संकुचित होकर चुप ही रहना पड़ेगा जैसे उत्तम अन्न हाथ और मुख से खाया जाता है वैसे दुर्गन्ध भी खाया जा सकता है तो क्या मलादि भी खाओगे ? क्या ऐसा भी कोई हो सकता है ?

प्रश्न—जो गाय के गोबर के चौका लगाते हो तो अपने गोबर से क्यों नहीं लगाते ? और गोबर के चौके में जाने से चौका अशुद्ध क्यों नहीं होता ?

उत्तर—गाय के गोबर से वैसा दुर्गन्ध नहीं जैसा कि मनुष्य के मल से, [गोमय] चिकना होने से शीघ्र नहीं उखड़ता, न कपड़ा बिगड़ता न मलीन होता है, जैसा मिट्टी से मैल चढ़ता है वैसा सूखे गोबर से नहीं होता मिट्टी और गोबर से जिस स्थान का लेपन करते हैं वह देखने में अति सुन्दर होता है और जहां रसोई बनती है वहां भोजनादि करने से घी, मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है उससे मक्खी कीड़ी आदि बहुत से जीव मलिन स्थान

ब्राह्मणों पर अन्ध-श्रद्धा

जो सदाचारी, विद्वान्, धर्मात्मा हो उन पर सब प्रकार की श्रद्धा रखना उचित है। इसी प्रकार सदाचारी तथा विदुषी स्त्रियों का आदर सत्कार करना प्रत्येक स्त्री का कर्तव्य है। ऐसे पुरुष और स्त्रियां जो कुछ उपदेश देवें उसको मानना चाहिये। अभाग्य से ब्राह्मणों में शिक्षा का प्रचार उठ गया उन्होंने आचार को तिलाजलि देदी, पर ये अपने प्रभुत्व को अब भी भूलना नहीं चाहते। ब्राह्मण स्त्री पुरुषों ने कहा कि हम ब्राह्मण हैं, इसी लिये हमारी बात को मानना चाहिये। 'ब्रह्म वाक्यं जनार्दनः' अर्थात् ब्राह्मण के मुख से जो शब्द निकले उसको यह समझना चाहिये कि वह ईश्वर के मुख से निकला। इसी विचार में फँसे हुये स्त्री पुरुष ब्राह्मण को देखते ही हाथ जोड़ने लगते हैं और उनकी सेवा करते हैं। भोली स्त्रियाँ समझती हैं कि यह ब्राह्मण ही हमको संसार से पार लगाने वाले हैं। जब लोग इनकी सेवा नहीं करते तो यह कहते कि हम तुमको शाप दे देंगे और तुम्हारा नाश हो जायेगा। चूँकि लिखा है 'ब्रह्मद्रोही विनश्यति' अर्थात् जो ब्राह्मण से द्रोह करता है उसका नाश हो जाता है। ऐसे ब्राह्मण के जिन्होंने वेदादि शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया, जो सदाचारी नहीं है, शाप देने से कुछ नहीं होता।

प्रश्न—ये लोग कौन हैं ?

उत्तर—इनको पोप कहना चाहिये जो छल कपट से धन एकत्र किया करते हैं। रोम देश में ईसाइयों का जो पादरी रहता है उसको पोप कहते हैं। उसने ईसा और मरियम की मूर्ति बना ली और भोले स्त्री पुरुषों से कहा कि यदि तुम इनके नाम पर इस लोक में रुपया दोगे तो अगले लोक में यह सब रुपया मिल जायेगा। जब भोले स्त्री पुरुष आते तो यह पोप रुपया लेकर मूर्ति के सन्मुख यह कहता कि इस स्त्री पुरुष ने तुम्हारे नाम इतना रुपय दिया है और एक कागज पर लिखकर रसीद दे देता। भोले

गान्धारी, माद्री, अलोपी आदि के साथ आर्य्यावर्त्तदेशीय राजा लोग विवाह आदि व्यवहार करते थे। शकुनि आदि कौरव, पाडव के साथ खाते पीते थे, कुछ विरोध नहीं करते थे क्योंकि उस समय सर्व भूगोल में वेदोक्त एक मत था, उसी में सब की निष्ठा थी और एक दूसरे का सुख, दुःख, हानि लाभ आपस में अपने समान समझते थे, तभी भूगोल में सुख था। अब तो बहुत से मतवाले होने से बहुत सा दुःख और विरोध बढ़ गया है इसका निवारण करना बुद्धिमानों का काम है। परमात्मा सब के मन में सत्य मत का ऐसा अंकुर डाले कि मिथ्या मत शीघ्र ही प्रलय को प्राप्त हो, इसमें सब विद्वान् लोग विचार कर विरोधभाव छोड़ के आनन्द को बढ़ावें।

ग्यारहवाँ समुल्लास

आर्यावर्त के मतों का खण्डन मण्डन

भारतवर्ष के समान और कोई देश नहीं है। पाँच हजार वर्ष पूर्व भारतवर्ष का चक्रवर्ती राज्य था। इसके अतिरिक्त संसार का सारा ज्ञान यहीं से फैला और यहीं से लोग आचार व्यवहार भी सीखते थे। परन्तु समय बीतने से सच्चा ज्ञान नष्ट हो गया और बहुत से मतमतान्तर फैल गये।

प्रश्न—मन्त्र से अस्त्र शस्त्र चलाते हैं क्या ठीक है?

उत्तर—नहीं मन्त्र शब्द के अर्थ विचार करने के होते हैं। विचार से यह सम्भव नहीं कि मन्त्र पढ़ते ही शत्रुओं की सेना पर अग्नि गिरने लगे या जल की वर्षा होने लगे। यदि मन्त्र में अग्नि का प्रभाव होता तो मन्त्र बोलने वाले का हृदय जीभ आदि पहिले ही जल जाना चाहिये था। इस लिये यह मन्त्रों की बात जो प्रचलित कर दी गई है अज्ञानियों को ठगने के लिये है, इस पर कभी भी विश्वास न करना चाहिये।

स्वामी शंकराचार्य ने दोनों का खण्डन और वेदों का मण्डन आरम्भ कर दिया। सुधनवा नाम का एक राजा ज्ञानवान था। उसने स्वामी शंकराचार्य जी का शास्त्रार्थ जैनियों से करवाया जिससे जैन धर्म की पोल खुल गई। सुधनवा राजा स्वामी शंकराचार्य का भक्त हो गया और स्वामी शंकराचार्य की दुन्दुभी सम्पूर्ण देश में गूँजने लगी। दस वर्ष तक स्वामी शंकराचार्य ने वैदिक धर्म का प्रचार किया। अन्त को जैनियों ने स्वामी शंकराचार्य को विष खिला दिया और इस कारण उनका शरीरान्त हो गया इस प्रकार ज्ञान का सूर्य शीघ्र ही अस्त हो गया।

स्वामी शंकराचार्य का मत

स्वामी शंकराचार्य जी मानते हैं कि एक ब्रह्म ही है दूसरी कोई चीज नहीं। ब्रह्म ही सच्चा है और यह जगत् झूठा है। उनका कहना है कि जिस प्रकार रस्सी में साँप का भ्रम होवे, सीप में चाँदी का भ्रम हो इसी प्रकार यह जगत है। स्वामी शंकराचार्य जीव की अलग सत्ता नहीं मानते। उनसे पूछना चाहिये कि ब्रह्म के अतिरिक्त सब झूठा है तो यह झूठेपन का आभास किसको हुआ। संसार में हम बहुत सी चीजें देखते हैं—सूरज, चाँद आदि। इनको शंकर स्वामी माया कहते हैं। उनका कहना है कि अज्ञान के कारण हम बहुत चीजें देखते हैं वास्तव में एक ब्रह्म ही है। इनके मत के अनुसार ज्ञान से ही मुक्ति मिलती है कर्म कुछ नहीं। इसलिये शंकराचार्य के मत के अनुसार प्रार्थना उपासना आदि कर्म भी व्यर्थ ही हैं। यदि हम ब्रह्म हैं तो हम उपासना किसकी करें। वैदिक सिद्धान्त ही सच्चा है जो ईश्वर, जीव और प्रकृति तीन चीजें मानता है।

मूर्त्ति-पूजा

प्रश्न—मूर्त्ति-पूजा कहाँ से चली ?

उत्तर—जैनियों से।

भोले पुरुष समझते हैं कि उनको अगले जन्म में रुपया मिल जायेगा। ठीक यही दशा भारतवर्ष के ब्राह्मणों की हुई। उन्होंने सब धार्मिक कृत्यों को छोड़ दिया और नये सम्प्रदाय बना लिये। वे भैरव और शिव बन गये और स्त्रियों को पार्वती बना लिया। इस प्रकार मद्य मांस और विषय भोग में फँस गये इसको ही उन्होंने धर्म का अंग बना लिया। जो इन वाम मार्गियों में सब से अधिक कुकर्म करे वही सब से श्रेष्ठ समझा जाता है।

अश्वमेध, गोमेध, नरमेध यज्ञ।

इन अज्ञानियों ने अश्वमेध, गोमेध, और नरमेध नाम के यज्ञ बना लिये और घोड़े, गाय और मनुष्यों को मार कर यज्ञ में बलि देने लगे। उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा कि इस प्रकार करने से वह स्वर्ग को जाते हैं और जो पशु या मनुष्य यज्ञ में डाला जाता है वह भी स्वर्ग को जाता है। इन पुरुषों से कहना चाहिये कि यदि ऐसा होता है तो अपने माता पिता तथा पुत्र पुत्रियों को मार कर यज्ञ में क्यों नहीं चढ़ा देते और उनको मुक्ति क्यों नहीं दिला देते और स्वयं ही यज्ञ में क्यों नहीं बलिदान हो जाते जिससे तुम्हारी मुक्ति हो जाय। इन ब्राह्मणों ने वेदों के मन्त्र के उल्टे अर्थ करके इन यज्ञों को सिद्ध कर लिया और लोगों को विश्वास दिला दिया कि वेदों में इस प्रकार के यज्ञों का विधान है। स्त्री पुरुषों की श्रद्धा वेद से उठ गई और वे नास्तिक बन गये। इस समय बौद्ध और जैन मत का प्रचार हुआ और सभ्य पुरुष और स्त्री वेदों का विरोध करके बौद्ध और जैन मतानुयायी हो गये।

स्वामी शंकराचार्य

बाईस सौ वर्ष हुये कि द्रविड़ देश में एक ब्राह्मण के कुल में स्वामी शङ्कराचार्य का जन्म हुआ। उन्होंने व्याकरण शास्त्र आदि का अध्ययन किया। इस समय बौद्ध और जैन मत का देश में बहुत बड़ा प्रचार था।

पोपजी की लीला सुनी तब तो सच ही मानली और उनसे पूछा कि ऐसी वह मूर्ति कहा पर है ? तब तो पोपजी बोले कि अमुक पहाड़ वा जङ्गल में है चलो मेरे साथ दिखला दूँ। तब तो वे अन्धे उस धूर्त्त के साथ चलके वहा पहुँचे। आश्चर्य होकर उस पोप के पग मे गिरकर कहा कि आपके ऊपर इस देवता की बड़ी कृपा है अब आप ले चलिये और हम मन्दिर बनवा देवेंगे। उसमे इस देवता की स्थापना कर आप ही पूजा करना। और हम लोग भी इस प्रतापी देवता के दर्शन पर्सन करके मनोवाञ्छित फल पावेंगे। इसी प्रकार जब एक ने रची तब तो उसको देख सब पोप लोगो ने अपनी जीवकार्थ छल कपट से मूर्त्तियाँ स्थापन की।

प्रश्न—परमेश्वर निराकार है, वह ध्यान में नहीं आ सकता इसलिये अवश्य मूर्ति होनी चाहिये'। भला जो कुछ भी नहीं करे तो मूर्ति के सन्मुख जा, हाथ जोड़ परमेश्वर का स्मरण करे और नाम ले। इसमे क्या हानि है ?

उत्तर—जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है तब उसकी मूर्त्ति ही नही बन सकती और जो मूर्त्ति के दर्शनमात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिसमे ईश्वर ने अद्भुत रचना की है क्या ऐसी रचनायुक्त पृथिवी, पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्त्तियां कि जिन पहाड़ आदि से मनुष्यकृत मूर्त्तियां बनती है उनको देखकर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता ? जो तुम कहते हो कि मूर्त्ति के देखने से परमेश्वर स्मरण होता है यह तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है और जब वह मूर्त्ति सामने न होगी तो परमेश्वर के स्मरण न होने से मनुष्य एकान्त पाकर चोरी, जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकता है। क्योंकि वह जानता है कि इस समय यहा मुझे कोई नहीं देखता। इसलिए वह अनर्थ करे बिना नहीं चूकता। इत्यादि अनेक दोष पाषाणादि मूर्त्तिपूजा करने से सिद्ध होते है। अब देखिये ! जो पाषाणादि मूर्त्तियो को न

प्रश्न—जैनियों ने कहां से चलाई ?

उत्तर—अपनी मूर्खता से।

प्रश्न—जैनी लोग कहते हैं कि शान्त ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्त्ति देख के जीव का भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है।

उत्तर—जीव चेतन और मूर्त्ति जड़। क्या मूर्त्ति के सदृश जीव भी जड़ हो जायगा ? यह मूर्त्ति-पूजा केवल पाखण्ड मत है, जैनियों ने चलाई है।

प्रश्न—शाक्त आदि ने मूर्तियों में जैनियों का अनुकरण नहीं किया है क्योंकि जैनियों की मूर्तियों के सदृश वैष्णवादि की मूर्तियां नहीं हैं।

उत्तर—हां, यह ठीक है। जैनियों के तुल्य बनाते तो जैनमत में मिल जाते। इसलिये जैनों की मूर्तियों से विरुद्ध बनाईं क्योंकि जैनों से विरोध करना इनका काम और इनसे विरोध करना मुख्य उनका काम था। जैसे जैनों ने मूर्तियां नङ्गी, ध्यानावस्थित और विरक्त मनुष्य के समान बनाई हैं, उनसे विरुद्ध वैष्णवादि ने यथेष्ट शृङ्गारित स्त्री के सहित रङ्ग राग भोग विषयासक्ति सहिताकार खड़ी और बैठी हुई बनाई हैं। जैनी लोग बहुत से शंख घंटा घरियाल आदि बाजे नहीं बजाते। ये लोग बड़ा कोलाहल करते हैं तब तो ऐसी लीला के रचने से वैष्णवादि सम्प्रदायी पोपों के चेले जैनियों के जाल से बच के इनकी लीला में आ फँसे और बहुत से व्यासादि महर्षियों के नाम से मनमानी असम्भव गाथायुक्त ग्रंथ बनाये। उनका नाम 'पुराण' रखकर कथा भी सुनाने लगे। और फिर ऐसी ऐसी विचित्र माया रचने लगे कि पाषाण की मूर्तियां बनाकर गुप्त कहीं पहाड़ वा जङ्गलादि में धर आये वा भूमि में गाड़ दीं। पश्चात् अपने चेलों में प्रसिद्ध किया कि मुझको रात्रि को स्वप्न में महादेव, पार्वती, राधा, कृष्ण, सीता, राम वा लक्ष्मीनारायण और भैरव, हनुमान आदि ने कहा है कि हम अमुक-अमुक ठिकाने हैं। हमको वहां से ला, मन्दिर में स्थापना कर और तू हमारा पुजारी होवे तो हम मनवाञ्छित फल देवें। जब आंख के अन्धे और गाँठ के पूरे लोगों ने

उत्तर—हाँ हाँ झूठी। क्योंकि "अज एकपात्" "अकायम्" इत्यादि विशेषणों को जन्म-मरण और शरीर धारण रहित वेदों में कहा है तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जो आकाशवत् सर्वत्र व्यापक, अनन्त और सुख, दुःख इत्यादि गुणरहित है वह एक छोटे से छोटे से वीर्य्य, गर्भाशय और शरीर में क्योंकर आ सकता है? आता जाता वह है कि जो एकदेशीय हो। और जो अचल, अदृश्य, जिसके बिना एक परमाणु भी खाली नहीं है, उसका अवतार कहना जानो वन्ध्या के पुत्र का विवाह कर उसके पौत्र के दर्शन करने की बात कहना है।

प्रश्न—जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्त्ति में भी है। पुनः चाहे किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं? देखो—

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्मा भावो हि कारणम्॥

परमेश्वर देव न काष्ठ, न पाषाण, न मृत्तिका से बनाये पदार्थों में है किन्तु परमेश्वर तो भाव में विद्यमान है। जहाँ भाव करे वहाँ ही परमेश्वर सिद्ध होता है।

उत्तर—जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी वस्तु में परमेश्वर की भावना करना अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्त्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ा के एक छोटी सी झोंपड़ी का स्वामी मानना। [देखो! यह] कितना बड़ा अपमान है? वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो वाटिका में से पुष्प पत्र तोड़ के क्यों चढ़ाते? चन्दन घिसके क्यों लगाते? धूप को जला के क्यों देते? घंटा, घरियाल, झाँज, पखाजा को लकड़ी से कूटना पीटना क्यों करते हो? तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोड़ते? शिर में है, क्यों शिर नमाते? अन्न, जलादि में है, क्यों नैवेद्य धरते? जल में है, स्नान क्यों कराते? क्योंकि

मानकर सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वज्ञ सर्वदा परमेश्वर को सब के बुरे भले कर्मों का द्रष्टा जानकर एक क्षणमात्र भी परमात्मा से अपने को पृथक् न जान के कुकर्म करना तो कहां रहा किन्तु मन में कुचेष्टा भी नहीं कर सकता। क्योंकि वह जानता है, जो मैं मन वचन और कर्म से भी कुछ बुरा काम करूंगा तो इस अन्तर्यामी के न्याय से बिन दण्ड पाये कदापि न बचूंगा और नाम स्मरण मात्र से कुछ भी फल नहीं होता। जैसा कि मिशरी मिशरी कहने से मुंह मीठा और नीम कहने से कड़ुवा नहीं होता किन्तु जीभ से चीखने ही से मीठा कड़वापन जाना जाता है।

प्रश्न—क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या है जो सर्वत्र पुराणों में नाम-स्मरण का बड़ा माहात्म्य लिखा है?

उत्तर—नाम लेने की तुम्हारी रीति उत्तम नहीं। जिस प्रकार तुम नाम स्मरण करते हो वह रीति झूठी है।

प्रश्न—हमारी कैसी रीति है?

उत्तर—वेद विरुद्ध।

प्रश्न—भला अब आप हमको वेदोक्त नाम-स्मरण की रीति बतलाइये?

उत्तर—नामस्मरण इस प्रकार करना चाहिये। जैसे "न्यायकारी" ईश्वर का एक नाम है। इस नाम से इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपात रहित होकर परमात्मा सब का यथावत् न्याय करता है वैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना, अन्याय कभी न करना। इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

प्रश्न—हम भी जानते है कि परमेश्वर निराकार है परन्तु उसने शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण करके राम, कृष्णादि अवतार लिये। इससे उसकी मूर्त्ति बनती है। क्या यह भी बात झूठी है?

बुला लेते ? और शत्रु के शरीर में जीवात्मा का विसर्जन करके क्यों नहीं मार सकते। सुनो भाई भोले लोगों के पोपजी तुमको ठग कर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वेदों में पाषाणादि मूर्ति-पूजा और परमेश्वर के आवाहन विसर्जन करने का एक अक्षर भी नहीं है।

प्रश्न—साकार में मन स्थित होता और निराकार में स्थित होना कठिन है, इस लिये मूर्ति पूजा करना चाहिये।

उत्तर—साकार में मन स्थित कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक-एक अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है। और निराकार परमात्मा के ग्रहण में यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता, निरवयव होने से चञ्चल भी नहीं रहता किन्तु उसी के गुण, कर्म स्वभाव का विचार करता आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है। और जो साकार में स्थिर होता तो सब जगत का मन स्थिर हो जाता क्योंकि जगत् में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र, आदि साकार में फँसा रहता है, परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता जब तक निराकार में न लगावे, क्योंकि निरवयव होने से उसमें मन स्थित हो जाता है। इसलिये मूर्तिपूजन करना अधर्म है।

दूसरा—उसमें क्रोड़ों रुपये मन्दिरों में व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है।

तीसरा—स्त्री पुरुषों का मन्दिरों में मेला होने से व्यभिचार, लड़ाई बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं।

चौथा—उसी को धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मान के पुरुषार्थरहित होकर मनुष्य जन्म व्यर्थ गमाता है।

पाँचवाँ—नाना प्रकार की विरुद्ध स्वरूप नाम चरित्रयुक्त मूर्त्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्धमत में चलकर आपस में फूट बढ़ा के देश का नाश करते हैं।

उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है और तुम व्यापक की पूजा करते हो वा व्याप्य की करते हो तो पाषाण लकड़ी आदि पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो ? और जो व्याप्य की करते हो तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं, ऐसा झूठ क्यों बोलते हो ? हम पाषाणादि के पुजारी हैं, ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते ?

अब कहिये "भाव" सच्चा है वा झूठा ? जो कहो सच्चा है तो तुम्हारे भाव के आधीन होकर परमेश्वर बद्ध हो जायगा और तुम मृत्तिका में सुवर्ण रत्नादि, पाषाण में हीरा पन्ना आदि, समुद्रफेन में मोती, जल में घृत, दुग्ध, दधि आदि और धूलि में मैदा, शक्कर आदि की भावना करके उनको वैसे क्यों नहीं बनाते हो ? तुम लोग दुःख की भावना कभी नहीं करते, वह क्यों होता ? और सुख की भावना सदैव करते हो, वह क्यों नहीं प्राप्त होता ? अन्धा पुरुष नेत्र की भावना करके क्यों नहीं देखता। मरने की भावना नहीं करते, क्यों मर जाते हो ? इस लिये तुम्हारी भावना सच्ची नहीं। क्योंकि जैसे में वैसी करने का नाम भावना है। जैसे अग्नि में अग्नि, जल में जल जानना और जल में अग्नि, अग्नि में जल समझना अभावना है। क्योंकि जैसे को वैसा जानना ज्ञान और अन्यथा जानना अज्ञान है। इसलिये तुम अभावना को भावना और भावना को अभावना कहते हो।

प्रश्न—अजी जब तक वेद मन्त्रों से आवाहन नहीं करते तब तक देवता नहीं आता और आवाहन करने से झट आता और विसर्जन करने से चला जाता है।

उत्तर—जो मन्त्र को पढ़कर आवाहन करने से देवता आ जाता है तो मूर्त्ति चेतन क्यों नहीं हो जाती ? और विसर्जन करने से चला क्यों नहीं जाता ? और वह कहाँ से आता और कहाँ जाता है ? सुनो अन्धो ! पूर्ण परमात्मा न आता और न जाता है। जो तुम मन्त्रबल से परमेश्वर को बुला लेते हो तो उन्हीं मन्त्रों से अपने मरे हुए पुत्र के शरीर में जीव क्यों नहीं

चौदहवाँ—जड का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जड बुद्धि हो जाता है क्योंकि ध्येय का जडत्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है ।

पन्द्रहवाँ—परमेश्वर ने सुगन्धियुक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिये बनाये हैं, उनको पुजारी जी तोडतोड कर, न जाने उन पुष्पों की कितने दिन तक सुगन्धि आकाश में चढकर वायु जल की शुद्धि करती और पूर्ण सुगन्धि के समय तक उसका सुगन्ध होता, उसका नाश मध्य में ही कर देते हैं । पुष्पादि कीच के साथ मिल सड कर उलटा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं । क्या परमात्मा ने पत्थर पर चढाने के लिये पुष्पादि सुगन्धयुक्त पदार्थ रचे हैं ?

सोलहवाँ—पत्थर पर चढे हुए पुष्प, चन्दन और अक्षत आदि सबका जल और मृत्तिका के संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आकर सड के इतना उससे दुर्गन्ध आकाश में चढता है कि जितना मनुष्य के मल का और सहस्रों जीव उसमें पडते उसी में मरते और सडते हैं । ऐसे ऐसे अनेक मूर्त्तिपूजा के करने में दोष आते हैं । इसलिये सर्वथा पाषाणादि मूर्त्तिपूजा सज्जन लोगों को त्यक्तव्य है । और जिन्होंने पाषाणमय मूर्त्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे, वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे, न बचते हैं, और न बचेंगे ।

प्रश्न—माता पिता आदि की सेवा करें और मूर्त्तिपूजा भी करें तब तो कोई दोष नहीं ?

उत्तर—पाषाणादि मूर्तिपूजा तो सर्वथा छोडने और मातादि मूर्तिमानों की सेवा करने ही में कल्याण है । बडे अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड के अदेव पाषाणादि में शिर मारना मूढों ने इसलिये स्वीकार किया है कि जो माता पितादि के सामने नैवेद्य व भेंट पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खा लेंगे और भेंट पूजा लेंगे तो हमारे मुख वा हाथ में कुछ न पडेगा । इससे पाषाणादि की मूर्ति बना, उसके आगे नैवेद्य

छठा—इन्ही के भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं। उनका पराजय होकर राज्य स्वातन्त्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेक विध दुःख पाते हैं।

सातवां—जब कोई किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पत्थर धरें तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता वा गाली प्रदान करता है वैसे ही परमेश्वर के उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्त्तियां धरते हैं उन दुष्ट बुद्धिवालों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे।

आठवाँ—भ्रान्त होकर मन्दिर मन्दिर देशदेशान्तर में घूमते घूमते दुःख पाते, धर्म संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते, चोर आदि से पीड़ित होते, ठगों से ठगाते रहते हैं।

नववां—दुष्ट पुजारियों को धन देते हैं वे उस धन को वेश्या, परस्त्रीगमन, मद्य, मांसाहार, लड़ाई बखेड़ों में व्यय करते हैं जिसमें दोनों का सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है।

दशवाँ—माता पिता आदि माननीयों का अपमान कर पाषाणादि मूर्त्तियों का मान करके कृतघ्न हो जाते हैं।

ग्यारहवाँ—उन मूर्त्तियों को कोई तोड डालता है तब हा हा करके रोते रहते हैं।

बारहवां—पुजारी परस्त्रियों के सङ्ग और पुजारिन परपुरुषों के सङ्ग से प्रायः दूषित होकर स्त्री पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ से खो बैठते हैं।

तेरहवाँ—स्वामी सेवक की आज्ञा का पालन यथावत् न होने से परस्पर विरुद्धभाव होकर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।

उत्तर—यह पाषाण का चमत्कार नहीं, किन्तु वहाँ भमरे के छत्ते लग रहे होंगे उनका स्वभाव ही क्रूर है, जब कोई उनको छेड़े तो वे काटने को दौड़ते हैं। और जो दूध की धारा का चमत्कार होता था वह पुजारी जी की लीला थी।

प्रश्न—'देखो महादेव म्लेच्छ को दर्शन न देने के लिये कूप में और वेणीमाधव एक ब्राह्मण के घर में जा छिपे। क्या यह भी चमत्कार नहीं है?

उत्तर—भला जिसका कोटपाल काल भैरव, लाटभैरव आदि भूत प्रेत और गरुड आदि गण, उन्होंने मुसलमानों को लड के क्यों न हटाये? जब महादेव और विष्णु की पुराणों में कथा है कि अनेक त्रिपुरासुर आदि बड़े भयंकर दुष्टों को भस्म कर दिया तो मुसलमानों को भस्म क्यों न किया? इससे यह सिद्ध होता है कि बेचारे पाषाण क्या लड़ते लड़ाते? जब मुसलमान मन्दिर और मूर्तियों को तोड़ते फोड़ते हुये काशी के पास आये तब पुजारियों ने उस पाषाण के लिङ्ग को कूप में डाल और वेणीमाधव को ब्राह्मण के घर में छिपा दिया। जब काशी कालभैरव के डर के मारे यमदूत नहीं जाते और प्रलय समय में भी काशी का नाश होने नहीं देते, तो म्लेच्छों के दूत क्यों न डराये? और अपने राजा के मन्दिर का क्यों नाश होने दिया? यह सब पोपमाया है।

प्रश्न—गया में श्राद्ध करने से पितरों का पाप छूट कर वहाँ के श्राद्ध के पुण्य प्रभाव से पितर स्वर्ग में जाते और पितर अपना हाथ निकाल कर पिण्ड लेते हैं क्या यह भी बात झूठी है?

उत्तर—सर्वथा झूठ, जो वहाँ पिण्ड देने का वही प्रभाव है तो जिन पण्डों को पितरों के सुख के लिये लाखों रुपये देते हैं उनका व्यय गयावाले वेश्यागमनादि पाप में करते हैं, वह पाप क्यों नहीं छूटता, और हाथ निकलता आज कल कहीं नहीं दीखता, विना पण्डों के हाथों के। यह कभी किसी धूर्त्त ने पृथिवी में गुफा खोद उसमें एक मनुष्य बैठा दिया होगा। पश्चात्

धर, घटानाद टं टं पूपूं, शंख बजा, कोलाहल कर, अंगूठा दिखला अर्थात्
'त्वमंगुष्ठं गृहाण भोजनं पदार्थं वाऽहं ग्रहीष्यामि'
जैसे कोई किसी को छले वा चिड़ावे कि तू घंटा ले और अंगूठा दिखलावे, उसके आगे से सब पदार्थ ले आप भोगे, वैसी ही लीला इन पुजारियों अर्थात् पूजा नाम सत्कर्म के शत्रुओं की है। मूढ़ों को चटक मटक, चलक झलक मूर्तियों को बना ठना आप वेश्या वा भडुओं के तुल्य बन ठन के विचारे निर्बुद्धि अनाथों का माल मार के मौज करते हैं। जो कोई धार्मिक राजा होता तो इन पापाणियों को पत्थर तोड़ने, बनाने और घर रचने आदि कामों में लगा के खाने पीने को देता, निर्वाह करता।

प्रश्न—जैसे स्त्री आदि की पाषाणादि मूर्ति देखने से कामोत्पत्ति होती है वैसे वीतराग शान्त की मूर्ति देखने से वैराग्य और शान्ति की प्राप्ति क्यों न होगी?

उत्तर—नहीं हो सकती, क्योंकि वह मूर्ति के जड़त्व धर्म आत्मा में आने से विचार शक्ति घट जाती है। विवेक के बिना न वैराग्य और वैराग्य के बिना विज्ञान, विज्ञान के बिना शान्ति नहीं होती। और जो कुछ होता है सो उनके संग, उपदेश और उनके इतिहासादि के देखने से होता है, क्योंकि जिसका गुण वा दोष न जान के उसकी मूर्तिमात्र देखने से प्रीति नहीं होती। प्रीति होने का कारण गुणज्ञान है। ऐसे मूर्तिपूजा आदि बुरे कारणों ही से आर्य्यावर्त्त में निकम्मे, पुजारी, भिक्षुक, आलसी पुरुषार्थरहित क्रोड़ों मनुष्य हुये हैं। वे मूढ़ होने से सब संसार में मूढ़ता उन्होंने फैलाई है। झूठ छल भी बहुत सा फैलाया है।

प्रश्न—देखो काशी में "औरङ्गजेब" बादशाह को 'लाटभैरव' आदि ने बड़े बड़े चमत्कार दिखाये थे। जब मुसलमान उसको तोड़ने गये और उन्होंने जब उन पर तोप गोला आदि मारे, तब बड़े भमरे निकल कर सब फौज को व्याकुल कर भगा दिया।

मॉज कर, उस बीच के हंडे मे उसी समय चावल डाल छः चूल्हों के मुख लोहे के तवों से बन्द कर, दर्शन करने वालों को, जो कि धनाढ्य हो, बुलाके दिखलाते है। ऊपर २ के हंडों से चावल निकाल, पके हुये चावलों को दिखला, नीचे के कच्चे चावल निकाल दिखाके, उनसे कहते है कि कुछ हंडो के लिये रख दो। आँख के अन्धे गाँठ के पूरे रुपये अशर्फी धरते और कोई २ मासिक भी बाँध देते है। शूद्र नीच लोग मन्दिर मे नैवेद्य लाते है। जब नैवेद्य हो चुकता है तब वे शूद्र नीच लोग जूठा कर देते है। पश्चात् कोई रुपया देकर हंडा लेवे उसके घर पहुँचाते और दीन गृहस्थ और साधु सन्तों को लेके शूद्र और अन्त्यज पर्यंत एक पंक्ति मे बैठ जूठा एक दूसरे का भोजन करते है। जब वह पंक्ति उठती है तब उन्हीं पत्तलों पर दूसरों को बैठाते जाते है। महाअनाचार है। और बहुतेरे मनुष्य वहाँ जाकर, उनका जूठा न खाके, अपने हाथ बना खाकर चले आते है, कुछ भी कुष्ठादि रोग नहीं होते है और उस जगन्नाथपुरी मे भी बहुत से परदेशी नहीं खाते। उनको भी कुष्ठादि रोग नहीं होते। और जगन्नाथपुरी मे भी बहुत से कुष्ठी है, नित्यप्रति जूठा खाने से भी रोग नहीं छूटता। और यह जगन्नाथ मे वाममार्गियों ने भैरवीचक्र बनाया है क्योंकि सुभद्रा, श्रीकृष्ण और बलदेव की बहिन लगती है। उसी को दोनों भाइयों के बीच मे स्त्री और माता के स्थान बैठाई है। जो भैरवी चक्र न होता तो यह बात कभी न होती। और रथ के पहियों के साथ कला बनाई है। जब उनको सूधी घुमाते है घूमती है, तब रथ चलता है। जब मेले के बीच मे पहुँचता है तभी उसकी कील को उलटी घुमा देने से रथ खड़ा रह जाता है। पुजारी लोग पुकारते है दान देओ, पुण्य करो, जिससे जगन्नाथ प्रसन्न होकर अपना रथ चलावे, अपना धर्म रहे। जब तक भेट आती जाती है तब तक ऐसे ही पुकारते जाते है। जब आ चुकती है तब एक ब्रजवासी अच्छे कपड़े दुशाला ओढ कर आगे खड़ा रह के हाथ जोड स्तुति करता है 'हे जगन्नाथ स्वामिन्! आप

उनके मुख पर कुछ बिछा पिरट दिया होगा और उस कपटी ने उठा लिया होगा, किसी आंख के अन्धे गांठ के पूरे को इस प्रकार ठगा हो तो आश्चर्य नहीं। वैसे ही वैजनाथ को रावण लाया था, यह भी मिथ्या बात है।

प्रश्न—देखो ! कलकत्ते की काली और कामाक्षा आदि देवी को लाखों मनुष्य मानते हैं, क्या यह चमत्कार नहीं है ?

उत्तर—कुछ भी नहीं। ये अन्धे लोग भेड़ के तुल्य एक के पीछे दूसरे चलते हैं, कूप खाड़े में गिरते हैं हट नहीं सकते। वैसे ही एक मूर्ख के पीछे दूसरे चल कर मूर्तिपूजा रूप गढ़े में फँसकर दुःख पाते हैं।

प्रश्न—भला यह तो जाने दो परन्तु जगन्नाथ जी में प्रत्यक्ष चमत्कार है। एक कलेवर बदलने के समय चन्दन का लकड़ा समुद्र में से स्वयमेव आता है चूल्हे पर ऊपर २ सात हण्डे धरने से ऊपर २ के पहिले २ पकते है। और जो कोई वहां जगन्नाथ की परसादी न खावे तो कुष्ठी हो जाती है और रथ आप से आप चलता पापी को दर्शन नहीं होता है। इन्द्र दमन के राज्य में देवताओं ने मन्दिर बनवाया है। कलेवर बदलने के समय एक राजा, एक पंडा, बढ़ई मर जाने आदि चमत्कारों को तुम झूठ न कर सकोगे ?

उत्तर—जिसने बारह वर्ष पर्यन्त जगन्नाथ की पूजा की थी वह विरक्त होकर मथुरा में आया था, मुझसे मिला था। मैंने इन बातों का उत्तर पूछा था उसने ये सब बातें झूठ बतलाईं। किन्तु विचार से निश्चय है कि जब कलेवर बदलने का समय आता है तब नौका में चन्दन की लकड़ी ले समुद्र में डालते हैं। वह समुद्र की लहरियों में किनारे लग जाती है। उसको ले सुतार लोग मूर्त्तियां बनाते हैं। जब रसोई बनती है तब कपाट बन्द कर के रसोइये के बिना अन्य किसी को न जाने, न देखने देते हैं। भूमि पर चारों ओर छः और बीच में एक चक्राकार चूल्हे बनते हैं। उन हण्डों के नीचे घी, मिट्टी और राख लगा छः चूल्हों पर चावल पका, उनके तले

प्रश्न—देखो ! सोमनाथ जी पृथिवी से ऊपर रहता था और बड़ा चमत्कार था क्या वह भी मिथ्या बात है ?

उत्तर—हाँ मिथ्या है । सुनो ! नीचे ऊपर चुम्बक पाषाण लगा रक्खे थे । उसके आकर्षण से वह मूर्त्ति अधर खड़ी थी । जब महमूद गजनवी आकर लड़ा तब यह चमत्कार हुआ कि उसका मंदिर तोड़ा गया और पुजारी भक्तों की दुर्दशा हो गई और लाखों फौज दस सहस्र फौज से भाग गई । जो पोप पुजारी पूजा, पुरश्चरण, स्तुति, प्रार्थना करते थे कि "हे महादेव ! इस म्लेच्छ को तू मार डाल, हमारी रक्षा कर" और वे अपने चेले राजाओं को समझाते थे "कि आप निश्चिन्त रहिये । महादेव जी, भैरव अथवा वीरभद्र को भेज देंगे । वे सब म्लेच्छों को मार डालेंगे वा अन्धा कर देंगे । अभी हमारा देवता प्रसिद्ध होता है । हनुमान्, दुर्गा और भैरव ने स्वप्न दिया है । कि हम सब काम कर देंगे । वे बिचारे भोले राजा और क्षत्रिय पोपों के बहकाने से विश्वास में रहे । कितने ही ज्योतिषी पोपों ने कहा कि अभी तुम्हारी चढ़ाई का मुहूर्त्त नहीं है । एक ने आठवां चन्द्रमा बतलाया दूसरे ने योगिनी सामने दिखलाई, इत्यादि बहकावट में रहे । जब म्लेच्छों की फौज ने आकर घेर लिया तब दुर्दशा से भागे, कितने ही पोप पुजारी और उनके चेले पकड़े गये । पुजारियों ने यह भी हाथ जोड़ कहा कि तीन क्रोड़ रुपया लेलो मन्दिर और मूर्त्ति मत तोड़ो । मुसलमानों ने कहा कि हम "बुतपरस्त नहीं" किन्तु "बुतशिकन" अर्थात् बुतों के तोड़ने वाले [मूर्त्तिभंजक] हैं । जा के झट मन्दिर तोड़ दिया । जब ऊपर की छत टूटी तब चुम्बक पाषाण पृथक् होने से मूर्त्ति गिर पड़ी । जब मूर्त्ति तोड़ी तब सुनते हैं कि अठारह क्रोड़ के रत्न निकले । जब पुजारी और पोपों पर कोड़ा पड़े तब रोने लगे । कहा, कि कोष बतलाओ । मार के मारे झट बतला दिया । तब सब कोष लूट मार कूट कर पोप और उनके चेलों को "गुलाम" बिगारी बना, पिसना पिसवाया, घास खुदवाया, मल मूत्रादि उठवाया और चना खाने को दिये ! हाय ! क्यों पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए ? क्यों परमेश्वर की भक्ति न

कृपा करके रथ को चलाइये ! हमारा धर्म रक्खो' इत्यादि बोल के साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर रथ पर चढ़ता है। उसी समय कील को सूधा कर देते हैं और जय २ शब्द बोल, सहस्रों मनुष्य रस्सी खींचते हैं, रथ चलता है। जब बहुत से लोग दर्शन को जाते हैं तब इतना बड़ा मन्दिर है कि जिसमें दिन में भी अन्धेरा रहता है और दीपक जलाना पड़ता है। उन मूर्त्तियों के आगे पर्दे दोनों ओर रहते हैं। पण्डे पुजारी भीतर खड़े रहते हैं। जब एक ओर वाले ने पर्दे को खींचा, झट मूर्त्ति आड़ में आ जाती है। तब सब पण्डे और पुजारी पुकारते हैं, तुम भेंट धरो, तुम्हारे पाप छूट जावेंगे, तब दर्शन होगा। शीघ्र करो। वे बिचारे भोले मनुष्य धूर्त्तों के हाथ लुटे जाते हैं। और झट पर्दा दूसरा खैंच लेते हैं तभी दर्शन होता है। तब जय शब्द बोल के प्रसन्न होकर धक्के खाके तिरस्कृत हो चले आते हैं। इन्द्रदमन वही है कि जिसके कुल के लोग अबतक कलकत्ते में हैं। वह धनाढ्य राजा और देवी का उपासक था। उसने लाखों रुपये लगाकर मन्दिर बनवाया था। इसलिये कि आर्यावर्त्त देश के भोजन का बखेड़ा इस रीति से छुड़ावें। परन्तु ये मूर्ख कब छोड़ते हैं ? देव मानो तो उन्हीं कारीगरों को मानो कि जिन शिल्पियों ने मन्दिर बनाया। राजा पण्डा और बढ़ई उस समय नहीं मरते परन्तु वे तीनों वहां प्रधान रहते हैं, छोटों को दुःख देते होंगे। उन्होंने सम्मति करके उसी समय, अर्थात् कलेवर बदलने के समय वे तीनों उपस्थित रहते हैं। मूर्त्ति का हृदय पोला (रक्खा) है उसमें एक सोने के सम्पुट में एक सालगराम रखते हैं कि जिसको प्रतिदिन धो के चरणामृत बनाते हैं। उसपर रात्रि की शयन-आरती में उन लोगों ने विष का तेजाब लपेट दिया होगा। उसको धो के उन्हीं तीनों को पिलाया होगा कि जिससे वह कभी मर गये होंगे। मरे तो इस प्रकार और भोजन भट्टों ने प्रसिद्ध किया होगा कि जगन्नाथ जी अपने शरीर बदलने के समय तीनों भक्तों को भी साथ ले गये ऐसी झूठी बातें पराये धन ठगने के लिये बहुत सी हुआ करती हैं।

उत्तर—हरद्वार उत्तर पहाड़ो मे जाने का एक मार्ग का आरम्भ है। हर की पैढी एक स्नान के लिये कुण्ड की सीढियो को बनाया है। सच पूछो तो "हाड़पैढ़ी" है क्योंकि देशदेशान्तर के मृतको के हाड़ उसमे पड़ा करते है। पाप कभी कहीं छूट सकता बिना भोगे अथवा नहीं कटते। "तपोवन" जब होगा तब होगा। अब तो "भिक्षुकवन" है। तपोवन मे जाते रहने से तप नही होता किन्तु तप तो करने से होता है क्योकि वहां बहुत से दुकानदार झूट बोलने वाले भी रहते है। "हिमवतः प्रभवति गगा" पहाड़ के ऊपर से जल गिरता है। गोमुख का आकार पोप लीला से बनाया होगा और वही पहाड़ पोप का स्वर्ग है। वहॉ उत्तर काशी आदि स्थान ध्यानियो के लिये अच्छा है, परन्तु दुकानदारो के लिये वहॉ भी दुकानदारी है। देवप्रयाग पुराण के गपोड़े की लीला है अर्थात् जहा अलखनन्दा और गगा मिली इसलिये वहा देवता बसते है ऐसे गपोड़े न मारे तो वहॉ कौन जाय? ओर टका कौन देवे? गुप्तकाशी तो नहीं है वह तो प्रसिद्ध काशी है। तीन युग की धूनी तो नहीं दीखती परन्तु पोपो को दश बीस पीढी की होगी, जैसी खाखियो की धूनी और पार्सियो की अग्यारी सदैव जलती रहती है। तप्तकुण्ड भी पहाड़ो के भीतर ऊष्मा गर्मी होती है उसमे तप कर जल आता है। उसके पास दूसरे कुण्ड मे ऊपर का जल वा जहा गर्मी नही वहॉ का आता है। इससे ठण्डा है, केदार का स्थान वह भूमि बहुत अच्छी है। परन्तु वहा भी एक जमे हुए पत्थर पर पोप वा पोपो के चेलो ने मन्दिर बना रक्खा है। वहा महन्त पुजारी पण्डे आख के अंधे गाठ पूरो से माल लेकर विषयानन्द करते है। वैसे ही बदरीनारायण मे ठग विद्या वाले बहुत से बैठे है। 'रावलजी" वहॉ के मुख्य है। एक स्त्री छोड़ अनेक स्त्री रख बैठे है। पशुपति एक मन्दिर और पचमुखी मूर्त्ति का नाम धर रक्खा है जब कोई न पूछे तभी पोपलीला बलवती होती है। परन्तु जैसे तीर्थ के लोग धूर्त्त धनहरे होते है वैसे पहाड़ी लोग नही होते। वहा की भूमि बड़ी रमणीय और पवित्र है।

की जो म्लेच्छों को मार डालते और अपनी विजय करते। देखो! जितनी मूर्त्तियां हैं उतनी शूरवीरों की पूजा करते तो भी कितनी रक्षा होती। पुजारियों ने इन पाषाणों की इतनी भक्ति की परन्तु मूर्ति एक भी उन [शत्रुओं] के सिर पर उड़के न लगी। जो किसी एक शूरवीर पुरुष की मूर्त्ति के सदृश सेवा करते तो वह अपने सेवकों को यथाशक्ति बचाता और उन शत्रुओं को मारता।

प्रश्न—अमृतसर का तालाब अमृतरूप, एक मुरेठी का फल आधा मीठा और एक भित्ती नमती और गिरती नहीं, रेवालसर में बेड़े तरते, हिमालय से कबूतर के जोड़े आ के सब को दर्शन देकर चले जाते हैं, क्या यह भी मानने योग्य नहीं ?

उत्तर—हां, उस तालाब का नाममात्र अमृतसर है। जब कभी जंगल होगा तब उसका जल अच्छा होगा इससे उसका नाम अमृतसर धरा होगा। जो अमृत होता तो पुराणियों के मानने के तुल्य कोई क्यों मरता? भित्ती की कुछ बनावट ऐसी होगी जिससे नमती होगी और गिरती न होगी। रीठे कलम के पैवन्दी होंगे अथवा गपोड़ा होगा। रेवालसर में बेड़ा तरने में कुछ कारीगरी होगी। और कबूतर के जोड़े पालित होंगे पहाड़ की आड़ में से पोप जी छोड़ते होंगे, दिखलाकर टका हरते होंगे।

प्रश्न—हरद्वार स्वर्ग का द्वार, हर की पैड़ी में स्नान करे तो पाप छूट जाते हैं। और तपोवन में रहने से तपस्वी होना, देवप्रयाग, गंगोत्तरी में गोमुख उत्तर काशी में गुप्त काशी, त्रियुगी नारायण के दर्शन होते हैं केदार और बदरी नारायण की पूजा छः महीने तक मनुष्य और छः महीने तक देवता करते हैं। महादेव का मुख नैपाल में पशुपति, तुङ्गनाथ में जानु और पग अमरनाथ में। इनके दर्शन स्पर्शन स्नान करने से मुक्ति हो जाती है। वहाँ केदार और बदरी से स्वर्ग जाना चाहैं तो जा सकता है, इत्यादि बातें कैसी हैं ?

के बड़े २ शिखर-टूट कर पृथ्वी पर गिरते हैं वैसे उनके बड़े २ अवयव गरुणपुराण के बाचने सुनने वाले के आगन में गिर पड़े गे तो वे दब मरेंगे या घर का द्वार अथवा सड़क रुक जायगी तो वे कैसे निकल और चल सकेंगे ? श्राद्ध, तर्पण, पिण्डप्रदान उन मरे हुये जीवों को तो नहीं पहुँचता किन्तु मृतकों के प्रतिनिधि पोपजी के घर, उदर और हाथ में पहुंचता है। जो वैतरणी के लिए गोदान लेते हैं वह तो पोपजी के घर में अथवा कसाई आदि के घर में पहुँचता है। वैतरणी पर गाय नहीं जाती पुन. किसकी पूँछ पकड़कर तरेगा ? और हाथ तो यहीं जलाया वा गाड़ दिया गया फिर पूँछ को कैसे पकड़ेगा ? यहां एक दृष्टान्त इस बात में उपयुक्त है कि—

एक जाट था। उसके घर में एक गाय बहुत अच्छी और बीस सेर दूध देने वाली थी, दूध उसका बड़ा स्वादिष्ट होता था। कभी २ पोपजी के मुख में भी पड़ता था। उसका पुरोहित यही ध्यान कर रहा था कि जब जाट का बुड्ढा बाप मरने लगेगा तब इसी गाय का संकल्प करा लूँगा। कुछ दिनों में दैवयोग से उसके बाप का मरण समय आया। जीभ बन्द हो गई और खाट से भूमि पर ले लिया अर्थात् प्राण छोड़ने का समय आ पहुँचा। उस समय जाट के इष्ट मित्र और सम्बन्धी भी उपस्थित हुए थे। तब पोपजी ने पुकारा कि यजमान ! अब तू इसके हाथ से गोदान करा। जाट १०) निकाल पिता के हाथ में रखकर बोला पढ़ो संकल्प ! पोपजी बोला वाह २ क्या बाप बारम्बार मरता है ? इस समय तो साक्षात् गाय को लाओ जो दूध देती हो, बुड्ढी न हो, सब प्रकार उत्तम हो। ऐसी गौ दान कराना चाहिये।

जाटजी—हमारे पास तो एक ही गाय है उसके बिना हमारे लड़के बालों का निर्वाह न हो सकेगा इसलिये उसको न दूँगा। लो २०) रुपये का संकल्प पढ़ देओ और इन रुपयों से दूसरी दुधार गाय ले लेना।

पोपजी—वाहजी वाह ! तुम अपने बाप से भी गाय को अधिक समझते

पुराण

(प्रश्न) पुराण तो व्यासजी के बनाये हुए है क्या उनको मानना चाहिये ?

(उत्तर) पुराण व्यास जी ने नहीं बनाये । यदि व्यासजी ने बनाये होते तो इतनी वेद विरुद्ध बाते उसमे न होती । यह किसी अन्य दुराचारी पुरुष के बनाये हुए है और उसमे व्यास जी का नाम रख दिया जिससे लोग इनको मानने लगे । इसमे बहुत सी तो अश्लील बाते भरी हुई है ।

श्राद्ध

प्रश्न—जो यमराज राजा, चित्रगुप्त मन्त्री, उसके बड़े भयङ्कर गण कज्जल के पर्वत के तुल्य शरीर वाले जीव को पकड़ कर ले जाते है । पाप पुण्य के अनुसार स्वर्ग मे डालते है । उसके लिये दान, पुण्य, श्राद्ध तर्पण, गोदानादि वैतरणी नदी तरने के लिये करते हैं । ये सब बाते झूठ क्यो कर हो सकती है ।

उत्तर—ये सब बाते पोपलीला के गपोड़े है । जो अन्यत्र के जीव वहाँ जाते है उनका धर्मराज आदि न्याय करते है तो वे यमलोक के जीव पाप करें तो दूसरा यमलोक मानना चाहिये कि वहा के न्यायाधीश उनका न्याय करें और पर्वत के समान यमगणो के शरीर हो तो दीखते क्यो नही ? और मरने वाले जीव को लेने मे छोटे द्वार मे उनकी अगुली भी नहीं जा सकती और सड़क गली मे क्यो नही रुक जाते । जो कहो कि वे सूक्ष्म देह भी धारण कर लेते है तो प्रथम पर्वतवत् शरीर के बड़े २ हाड़ पोपजी बिना अपने घर के कहाँ धरेंगे । जब जङ्गल मे आग लगती है तब एक दम पिपीलिकादि जीवो के शरीर छूटते हैं । उनको पकड़ने के लिये असख्य यम के गण आवे तो वहाँ अन्धकार हो जाना चाहिये और जब आपस मे जीवो को पकड़ने को दौड़ेगे तब कभी उनके शरीर ठोकर खा जायेंगे तो जैसे पहाड़

पोपजी—नहीं २ वहाँ बस दान के पुण्य के प्रभाव से दूसरी गाय बनकर उसको उतार दिया होगा

जाटजी—वैतरणी नदी यहाँ से कितनी दूर और किधर की ओर है ?

पोपजी—अनुमान से कोई तीस क्रोड़ कोश दूर है क्योंकि उञ्चास कोटि योजन पृथ्वी है। और दक्षिण नैऋत्य दिशा में वैतरणी नदी है।

जाटजी—इतनी दूर से तुम्हारी चिट्ठी वा तार का समाचार गया हो उसका उत्तर आया हो कि वहाँ पुण्य की गाय बन गई अमुक के पिता को पार उतार दिया, दिखलाओ।

पोपजी—हमारे पास गरुडपुराण के लेख के बिना डाक या तारबर्की दूसरा कोई नहीं।

जाटजी—इस गरुड़पुराण को हम सच्चा कैसे मानें ?

पोपजी—जैसे सब मानते हैं।

जाटजी—यह पुस्तक तुम्हारे पुरुषाओं ने तुम्हारी जीविका के लिये बनायी है क्योंकि पिता को बिना अपने पुत्रों के कोई प्रिय नहीं। जब मेरा पिता मेरे पास चिट्ठी पत्री वा तार भेजेगा तभी मैं वैतरणी नदी के किनारे गाय पहुँचा दूँगा और उनको पार उतार पुनः गाय को घर में ले आ दूध को मैं और मेरे लड़के बाले पिया करेंगे, लाओ! दूध की भरी हुई बटलोई, गाय, बछड़ा, लेकर जाटजी अपने घर को चल दिये।

पोपजी—तुम दान देकर लेते हो तुम्हारा सत्यानास हो जायगा।

जाटजी—चुप रहो, नहीं तो तेरह दिन दूध के बिना जितना दुःख हमने पाया है सब कसर निकाल दूँगा। तब पोपजी चुप रहे और जाटजी गाय बछड़ा ले अपने घर पहुँचे।

दान

प्रश्न—तुम्हारे कहने से गोदानादि दान किसी को न देना और न कुछ दान पुण्य करना ऐसा सिद्ध होता है।

हो ? क्या अपने बाप को वैतरणी नदी में डुबा देना चाहते हो। तुम अच्छे सुपुत्र हुये।

तब तो पोपजी की ओर सब कुटुम्बी हो गये क्योंकि उन सब को ही पोपजी ने बहका रक्खा था और उस समय भी इशारा कर दिया। सब ने मिलकर हठ से उसी गाय का दान उसी पोपजी को दिला दिया। उस समय जाट कुछ भी न बोला। उसका पिता मर गया और पोपजी बच्चा सहित गाय और दोहने की बटलोई को ले अपने घर में गौ बाँध बटलोई धर पुनः जाट के घर आया और मृतक के साथ श्मशान भूमि में जाकर दाह कर्म्म कराया। वहाँ भी कुछ कुछ पापलीला चलाई, पश्चात् दशागात्र सपिंडी कराने आदि में भी उसको मूंडा। महाब्राह्मण ने भी लूटा और भुक्कड़ों ने भी बहुत सा माल पेट में भरा अर्थात् जब सब क्रिया हो चुकी तब जाट ने जिस किसी के घर से दूध माँग मूँग निर्वाह किया। चौदहवें दिन प्रातःकाल पोपजी के घर पहुँचा। देखे तो गाय दुह, बटलोई भर पोपजी की उठने की तैयारी थी। इतने ही में जाट जी पहुँचे। उसको देख पोपजी बोला आइये यजमान! बैठिये।

जाटजी—तुम भी पुरोहितजी इधर आओ।

पोपजी—अच्छा दूध धर आऊँ।

जाटजी—नहीं २ दूध की बटलोई इधर लाओ। पोपजी बिचारे जा बैठे और बटलोई सामने धर दी।

जाटजी—तुम बड़े झूठे हो।

पोपजी—क्या झूठ किया।

जाटजी—कहो तुमने गाय किसलिये ली थी।

पोपजी—तुम्हारे पिता को वैतरणी नदी तरने के लिये।

जाटजी—अच्छा तो तुमने वैतरणी नदी के किनारे पर गाय क्यों नहीं पहुँचाई ? हमतो तुम्हारे भरोसे पर रहे और तुम अपने घर बाँध बैठे। न जाने मेरे बाप ने वैतरणी नदी में कितने गोते खाये होंगे ?

और सत्यशास्त्रों के पढ़ने पढ़ाने हारे के परीक्षक, किसी की लल्लो पत्तो न करें, प्रश्नों के यथार्थ समाधान कर्त्ता, अपने आत्मा के तुल्य अन्य का भी सुख, दुःख, हानि, लाभ समझने वाले अविद्यादि क्लेश, हठ, दुराग्रहाऽभिमानरहित, अमृत के समान अपमान और विष के समान मान को समझने वाले, सन्तोषी, जो कोई प्रीत से जितना देवे उतने ही से प्रसन्न, एक बार आपत्काल में माँगे भी न देने वा वर्जने पर भी दु.ख वा बुरी चेष्टा न करना, वहाँ से झट लौट जाना, उसकी निन्दा न करना, सुखी पुरुषों के साथ मित्रता, दुःखियों पर करुणा, पुण्यात्माओं से आनन्द और पापियों से "उपेक्षा" अर्थात् रागद्वेषरहित रहना, सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, निष्कपट, ईर्ष्या-द्वेषरहित, गम्भीराशय, सत्पुरुष, धर्म से युक्त और सर्वथा दुष्टाचार से रहित, अपने तन मन धन को परोपकार करने में लगाने वाले, पराये सुख के लिये अपने प्राणों के भी समर्पितकर्त्ता इत्यादि शुभलक्षणयुक्त सुपात्र होते हैं। परन्तु दुर्भिक्षादि आपत्काल में अन्न, जल, वस्त्र और औषध पथ्य स्थान के अधिकारी सब प्राणीमात्र हो सकते हैं।

प्रश्न—दाता कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर—तीन प्रकार के—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट। उत्तम दाता उसको कहते हैं—जो देश काल और पात्र को जानकर सत्यविद्या धर्म की उन्नति रूप परोपरार्थ देवे। मध्यम वह है—जो कीर्ति वा स्वार्थ के लिये दान करे। नीच वह है—कि अपना वा पराया कुछ उपकार न कर सके किन्तु वेश्यागमनादि वा भांड भाट आदि को देवे, देते समय तिरस्कार अपमानादि भी कुचेष्टा करे, पात्र कुपात्र का कुछ भी भेद न जाने, किन्तु "सब अन्न बारह पसेरी" बेचने वालों के समान विवाद, लड़ाई, दूसरे धर्मात्मा को दु.ख देकर सुखी होने के लिये दिया करे वह अधम दाता है। अर्थात् जो परीक्षा पूर्वक विद्वान् धर्मात्माओं का सत्कार करे वह उत्तम और जो कुछ परीक्षा करे वा न करे परन्तु जिसमें अपनी प्रशंसा हो उसको मध्यम और जो अन्धाधुन्ध परीक्षारहित निष्फल दान दिया करे वह नीच दाता कहाता है।

उत्तर—यह तुम्हारा कहना सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि सुपात्रों को, परोपकारियों को परोपकारार्थ सोना, चाँदी, हीरा, मोती, माणिक, अन्न, जल स्थान वस्त्रादि दान अवश्य करना उचित है किन्तु कुपात्रों को कभी न देना चाहिये।

प्रश्न—कुपात्र और सुपात्र का लक्षण क्या है ?

उत्तर—जो छली, कपटी, स्वार्थी, विषयी, काम, क्रोध, लोभ, मोह से युक्त, परहानि करने वाले, लपटी, मिथ्यावादी, अविद्वान् कुसंगी, आलसी, जो कोई दाता हो उसके पास वारम्वार मांगना, धरना देना, ना किये पश्चात् भी हठता से मांगते ही जाना, सन्तोष न होना, जो न दे उसकी निन्दा करना, शाप और गाली प्रदानादि देना, अनेक बार जो सेवा करे और एक बार न करे तो उसका शत्रु बन जाना, ऊपर से साधु का वेश बना लोगों को बहका कर ठगना और अपने पास पदार्थ हो तो भी मेरे पास कुछ भी नहीं है कहना, सब को फुसला फुसलू कर स्वार्थ सिद्ध करना, रात दिन भीख मांगने ही में प्रवृत्त रहना, निमन्त्रण दिये पर यथेष्ट भङ्गादि मादक द्रव्य खा पीकर बहुत सा पराया पदार्थ खाना पुनः उन्मत्त हो कर प्रमादी होना, सत्य मार्ग का विरोध और झूठे मार्ग में अपने प्रयोजनार्थ चलना, वैसे ही अपने चेलों को केवल अपनी ही सेवा करने का उपदेश करना, अन्य योग्य पुरुषों की सेवा करने का नहीं, सद्विद्यादि प्रवृत्ति के विरोधी, जगत् के व्यवहार अर्थात् स्त्री, पुरुष, माता, पिता, सन्तान, राजा, प्रजा, इष्टमित्रों में अप्रीति कराना कि ये सब असत्य हैं और जगत् भी मिथ्या है, इत्यादि दुष्ट उपदेश करना आदि कुपात्रों के लक्षण हैं। और जो ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय, वेदादि विद्या के पढ़ने पढ़ाने हारे, सुशील, सत्यवादी परोपकारप्रिय, पुरुषार्थी, उदार, विद्या धर्म की निरन्तर उन्नति करने हारे, धर्मात्मा, शान्त, निन्दा स्तुति में हर्ष शोकरहित, निर्भय, उत्साही, योगी ज्ञानी, सृष्टिक्रम, वेदाज्ञा, ईश्वर के गुण कर्म स्वभावानुकूल वर्त्तमान करने हारे, न्याय की रीतियुक्त पक्षपात रहित सत्योपदेश

स्त्री दिन रात भूखी रही थी। दैवयोग से उस दिन एकादशी थी। उसने कहा कि मैंने एकादशी जानकर तो नहीं की अकस्मात् उस दिन भूखी रह गई थी। ऐसा राजा के सिपाहियों से कहा। तब वे उसको राजा के सामने ले आये। उससे राजा ने कहा कि तू इस विमान को छू। उसने छूआ। देखो! उसी समय विमान ऊपर को उड़ गया। यह तो बिना जाने एकादशी के व्रत का फल है, जो जान के करे तो उसके फल का क्या पारावार है!!!

वाह रे आंख के अन्धे लोगो! जो यह बात सच्ची हो तो हम एक पान का बीड़ा, जो कि स्वर्ग में नहीं होता, भेजना चाहते हैं। सब एकादशी वाले अपना फल दे दो। जो एक पानबीड़ा ऊपर को चला जायगा तो पुनः लाखों क्रोड़ों पान वहाँ भेजेंगे और हम भी एकादशी किया करेंगे और जो ऐसा न होगा तो तुम लोगों को इस भूखे मरने रूप आपत्काल से बचावेंगे। इन चौबीस एकादशियों का नाम पृथक् पृथक् रक्खा है। किसी का "धनदा" किसी का "कामदा" किसी का "पुत्रदा", किसी का "निर्जला"। बहुत से दरिद्र, बहुत से कामी और बहुत से निर्वंशी लोग एकादशी करके बूढ़े हो गये और मर भी गये परन्तु धन, कामना और पुत्र प्राप्त न हुआ और ज्येष्ठ महीने के शुक्लपक्ष में कि जिस समय एक घड़ी भर जल न पावे तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है व्रत करने वालों को महादुःख प्राप्त होता है। विशेष कर बंगाल में सब विधवा स्त्रियों की एकादशी के दिन बड़ी दुर्दशा होती है। इस निर्दयी कसाई को लिखते समय कुछ भी मन में दया न आई नहीं तो निर्जला का नाम सजला और पौष महीने की शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम निर्जला रख देता तो भी कुछ अच्छा होता है। परन्तु इस पोप को दया से क्या काम? "कोई जीवो वा मरो, पोप जी का पेट पूरा भरा करो"। भला गर्भवती वा सद्योविवाहिता स्त्री, लड़के वा युवा पुरुषों को तो कभी उपवास न चाहिये। परन्तु किसी को करना भी हो तो जिस दिन अजीर्ण हो, क्षुधा न लगे उस दिन शर्करावत् शर्बत वा दूध पीकर रहना चाहिये। जो भूख में नहीं खाते और बिना भूख के भोजन करते हैं दोनों रोगसागर में गोते खा

प्रश्न—दान के फल यहां होते है वा परलोक मे ?

उत्तर—सर्वत्र होते है ।

प्रश्न—स्वय होते है वा कोई फल देने वाला है ।

उत्तर—फल देने वाला ईश्वर है जैसे कोई चोर डाकू स्वय बंदीघर मे जाना नही चाहता । राजा उसको अवश्य भेजता है धर्मात्माओ के सुख की रक्षा करता, भुगाता, डाकू आदि से बचा कर उसको सुख मे रखता है वैसा ही परमात्मा सब को पाप पुण्य के दुःख और सुख रूप फलो को यथावत् भुगाता है ।

एकादशी व्रत

जितने पाप है वे सब एकादशी के दिन अन्न मे बसते है । इस पोप जी से पूछना चाहिये कि किसके पाप बसते है ? तेरे वा तेरे पिता आदि के ? जो सब के सब पाप एकादशी मे जा बसे तो एकादशी के दिन किसी को दुःख न रहना चाहिये । ऐसा तो नहीं होता किन्तु उलटा क्षुधा आदि से दुःख होता है । दुःख पाप का फल है । इससे भूखे मरना पाप है । इसका बडा महात्म्य बनाया है जिसकी कथा बाच के बहुत ठगे जाते है । उसमे एक गाथा है कि—

ब्रह्मलोक मे एक वेश्या थी । उसने कुछ अपराध किया । उसको शाप हुआ । पृथ्वी पर गिर उसने स्तुति की कि मै पुनः स्वर्ग मे क्योकर आ सकूंगी ? उसने कहा जब कभी एकादशी के व्रत का फल तुझे कोई देगा तभी तू स्वर्ग मे आजावेगी । वह विमान सहित किसी नगर मे गिर पडी । वहाँ के राजा ने उससे पूछा तू कौन है ? तब उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि जो कोई मुझको ऐकादशी का फल अर्पण करे तो फिर भी स्वर्ग को जा सकती हूँ । राजा ने नगर मे खोज कराई । एक भी एकादशी का व्रत करनेवाला न मिला । किन्तु उस दिन किसी शूद्र स्त्री पुरुष मे लडाई हुई थी । क्रोध से

(खाखी) हम आप ही महात्मा हैं। हमको किसी दूसरे की गर्ज नहीं।

(पण्डित) जिनके भाग्य नष्ट होते हैं उनकी तुम्हारी सी बुद्धि और अभिमान होता है। खाखी चला गया आसन पर और पण्डित घर को गये। जब सन्ध्या आरती हो गई तब उस खाखी को बुड्ढा समझ बहुत खाखी "डण्डोत २" कहते साष्टांग करके बैठे। उस खाखी ने पूछा अबे रामदासिया ! तू क्या पढ़ा है ?

(रामदास) महाराज मैंने "बेस्नुसहसरनाम" पढ़ा है।

अबे गोविन्दासिया ! तू क्या पढ़ा है ?

(गोविन्दासिया) मैं "रामसतवराज" पढ़ा हूँ अमुक खाखी जी के पास से।

तब रामदास बोला कि महाराज आप क्या पढ़े हैं ?

(खाखी जी) हम गीता पढ़े हैं।

(रामदास) किसके पास ?

(खाखी) चल बे छोकरे हम किसी को गुरू नहीं करते। देख हम "परागराज" में रहते थे। हमको अक्खर आता नहीं था। जब किसी लम्बी धोतीवाले पण्डित को देखता था तब गीता के गोटके में पूछता था कि इस कलङ्गी वाले अक्खर का क्या नाम है ? ऐसे पूछता २ अठारा अध्याय गीता रगड मारी, गुरू एक भी नहीं किया। भला ऐसे विद्या के शत्रुओं को अविद्या घर करके ठहरे नहीं तो कहाँ जाय ?॥

अब इनमें बहुत से खाखी लकड़े की लङ्गोटी लगा, धूनी तापते, जटा बढ़ाते, सिद्ध का वेष कर लेते हैं ? बगुले के समान ध्यानावस्थित होते हैं; गांजा, भांग, चरस के दम लगाते, लाल नेत्र। कर रखते, सब से चुटकी चुटकी अन्न, पिसान कौड़ी, पैसे मांगते गृहस्थों के लड़कों को बहका कर चेले बना लेते हैं। बहुत करके मजूर लोग उनमें होते हैं। कोई विद्या को पढ़ता हो तो उसको पढ़ने नहीं देते, किन्तु कहते हैं कि—

दुःख पाते है। इन प्रमादियो के कहने लिखने का प्रमाण कोई भी न करे।

साधू सन्त

(खाकी) देख हम रात दिन नगे रहते, धूनी तापते, गाजा चरस के सैकड़ो दम लगाते, तीन तीन लोटा भाग पीते, गाजा, भाग, धतूरा की पत्ती की भाजी बना खाते, सखिया और अफीम भी चट निगल जाते, नशा मे गर्क रात दिन बेगम रहते दुनियाँ को कुछ नही समझते, भीख माग कर ठिक्कड़ बना खाते, रात भर ऐसी खासी उठती जो पास मे सोवे उसको भी नींद कभी न आवे इत्यादि सिद्धियाँ और साधूपन हम मे है। फिर तू हमारी निन्दा क्यों करता है? चेत् बाबूडे जो हमको दिक्क करेगा हम तुमको भसम कर डालेगे।

(पडित) ये सब लक्षण असाधु मूर्ख कौर गवर्गण्डो के है। साधुओ के नहीं। सुनो "साध्नोति पराणि धर्मकार्याणि स साधु" जो धर्मयुक्त उत्तम काम करे, सदा परोपकार में प्रवृत्त हो, कोई दुर्गुण जिसमे न हो, विद्वान् सत्योपदेश से सब का उपकार करे उसको साधु कहते है।

(खाखी) चल बे तू साधु के कर्म क्या जाने? सन्तों का घर बड़ा है किसी सन्त से अटकना नही, नहीं तो देख एक चीमटा उठाकर मारेगा, कपाल फुड़वा लेगा।

(पण्डित) अच्छा खाकी जाओ अपने आसन पर, हम से बहुत गुस्से मत हो। जानते हो राज्य कैसा है? किसी को मारोगे। तो पकड़े जाओगे, क़ैद भोगोगे, बेत खाओगे वा कोई तुमको भी मार बैठेगा फिर क्या करोगे? यह साधु का लक्षण नही।

(खाखी) चल बे चेले, किस राक्षस का मुख दिखलाया।

(पण्डित) तुमने कभी किसी महात्मा का सग नहीं किया है, नहीं तो ऐसे जड मूर्ख न रहते।

(पण्डित) सुनो कहाँ से ? बुद्धि ही नही है । उपदेश सुनने समझने के लिये विद्या चाहिये ।

(स्वामी) जो सब शास्त्र पढे सतो को न माने तो जानो कि वह कुछ भी नही पढा ।

(पण्डित) हाँ हम सतो की सेवा करते है परन्तु तुम्हारे से दुर्दङ्गो की नहीं करते, क्योंकि सन्त सज्जन, विद्वान्, धार्मिक परोपकारी पुरुषो को कहते है ।

बारहवां समुल्लास

वेदो के ज्ञान लोप हो जाने के कारण भारतवर्ष मे बहुत से धर्म प्रचलित हो गये । यदि ये वेद के अनुसार होते तो इनमे त्रुटियाँ न होती । परन्तु लोगो ने अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार जो सिद्धान्त चाहे बना दिये । धर्मो की सख्या अनगिणित है । यहाँ पर केवल मुख्य धर्मों के सिद्धान्तो का वर्णन किया जाता है । इन सिद्धान्तो से वैदिक मत की तुलना कीजिये तो उनकी सब कमी मालूम हो जावेगी ।

चारवाक

चारवाक धर्म वाले मानते है कि जब तक जीवित रहे खूब आनन्द भोग करे और यदि अपने पास न हो तो कर्ज लेकर भोगे । वे कहते हैं कि शरीर एक दिन नष्ट हो जायेगा, इसलिये मनुष्य को जितना समय मिले उसमें जितना हो सके आनन्द भोग करे । शरीर मरते ही नष्ट हो जाता है फिर पाप और पुण्य का फल किसको मिलेगा । इन लोगों से पूछना चाहिये कि पृथ्वी आदि जितने पदार्थ है वे सब जड है । जड से

पठितव्यं तदपि मर्त्तव्यं दन्तकटाकटेति किं कर्त्तव्यम्

सन्तों को विद्या पढ़ने से क्या काम, क्योंकि विद्या पढ़ने वाले भी मर जाते हैं फिर दन्त कटाकट क्यों करना ? साधुओं को चार घर फिर आना, सन्तों की सेवा करनी, रामजी का भजन करना।

जो किसी ने मूर्ख अविद्या की मूर्त्ति न देखी हो तो खाखीजी का दर्शन कर आवे। उनके पास जो कोई जाता है उनको बच्चा बच्ची कहते हैं, चाहे वे खाखीजी के बाप मा के समान क्यों न हों जैसे खाखीजी हैं वैसे ही रूखड़, गोदड़िये और जमातवाले सुतरेसाई और अकाली, कनफटे, जोगी, औघड़ आदि सब एक से हैं। एक खाखी चेला "श्रीगणेशाय नमः" घोखता घोखता कुवे पर जल भरने को गया। वहा पंडित बैठा था। वह उसको 'स्रीगनेसाजन मे', घोखते देखकर बोला अरे साधू ! अशुद्ध घोखता है, "श्रीगणेशाय नमः" ऐसा घोख। उसने झट लोटा भर गुरूजी के पास जा कहा कि एक बम्मन मेरे घोखने को अशुद्ध कहता है। ऐसा सुनकर झट खाखीजी उठा, कूप पर गया और पण्डित से कहा तू मेरे चेले को बहकाता है ? तू क्या पढा है ? देख तू एक प्रकार का पाठ जानता है, हम तीन प्रकार जानते हैं। "स्रीगनेसाजन्नमे" "स्रीगनेसायन्नमे" "श्रीगनेसायनमे"।

(पण्डित) सुनो साधुजी ! विद्या की बात बहुत कठिन है, बिना पढ़े नहीं आती।

(खाखी) चल बे, सब विद्वान् तो हमने रगड़ मारे जो भाग मे घोट के एक दम सब उड़ा दिये। सन्तों का घर बड़ा है। तू बाबू क्या जाने।

(पण्डित) देखो जो तुमने विद्या पढ़ी होती तो ऐसे अपशब्द क्यों बोलते ? सब प्रकार का तुम को ज्ञान होता।

(खाखी) अबे तू हमारा गुरू बनता है ? तेरा उपदेश हम नहीं सुनते।

है जिस पर कभी भी विश्वास नहीं किया जा सकता। इतने लम्बे शरीर वाले मय शरीर स्वर्ग लोक को जाते हैं तो उनके रहने के लिये कितने स्थान की आवश्यकता पड़ेगी। महावीर ने अंगूठे से पृथ्वी को दबा दिया जिस से शेष-नाग काँप गया। महावीर को सर्प ने काट लिया। एक कोपा नाम की वेश्या ने थाली में सरसो की ढेरी लगा दी और उसमें फूल रखकर उसमें फूलों से ढकी हुई सुई खड़ी कर दी। उस सुई की नोक पर वह नाची पर एक भी सरसों हिली नहीं और न सुई ही उस वेश्या के पैर मे गड़ी। एक छोटे से बर्तन में ऊँट आ गया। ऐसी बहुत सी बाते हैं जिन पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

(२) जैनियों की अहिंसा—अहिंसा का व्रत बहुत अच्छा है परन्तु जैनियों ने अहिंसा का बड़ा विचित्र रूप बना रक्खा है।

(३) जैन मत वाले अपनी चीजों को बहुत उत्तम मानते हैं और दूसरे मत वालों की खराब। उनकी पुस्तकों मे लिखा है कि जैन मत का साधू चाहे शुद्ध चरित्र हो चाहे अशुद्ध चरित्र हो सब पूजनीय है। एक दूसरे स्थान पर लिखा है जैन मत का साधू चरित्रहीन हो तो भी अन्य मत के साधुओं से श्रेष्ठ है। श्रावक लोग जैन मत के साधुओं को चरित्र रहित भ्रष्टाचारी देखे तब भी उनकी सेवा करें। एक अन्य स्थान पर लिखा है कि जैन मत का साधू कोपा वेश्या से भोग करने के पश्चात् त्यागी होकर स्वर्ग लोक को जाता है। इनके धर्म के अनुसार जो व्यक्ति व्यभिचारी अधर्मी हो और यदि वह जैन मत को मानता हो तो मुक्ति को प्राप्त हो जाता है परन्तु यदि अन्य मत वाला सच्चरित्र होकर जीवन व्यतीत करे तो उसकी मुक्ति नहीं होती।

(४) नास्तिकता—जैनी लोग ईश्वर मे विश्वास नहीं करते। वे मानते हैं कि जगत् का बनाने वाला कोई नहीं। यह जगत अपने आप बना है, यह बात कितनी युक्ति शून्य है। बिना कर्ता के कर्म नहीं हो सकता, बिना परिश्रम के जैनियों के पेट में न रोटी पहुँच जाती और न कपास अपने आप कोट कुर्ते

चेतन की उत्पत्ति किस प्रकार से हो सकती है और जो विषय भोग को ही सुख मानते हैं। वह भी क्षण मात्र के लिये सुख देने वाला अधिक नही क्योंकि विषय भोग मे लिप्त होने से दुख होता ही है। स्त्री पुरुषों को भिन्न भिन्न प्रकार के रोग लग जाते है। यह लोग लोक परलोक को भी नहीं मानते। इनके धर्म मे व्यभिचार आदि का वर्णन है।

बौद्धमत

महात्मा बुद्ध ने बौद्धमत का प्रचार किया। उनके शिष्यों ने भिन्न भिन्न सिद्धान्तों को अपनाया। इस प्रकार बौद्ध चार प्रकार के होते है :—

(१) माध्यमिक।

(२) योगाचार।

(३) सौत्रान्तिक।

(४) वैभाषिक।

इनके सिद्धान्त इस प्रकार है :—

(१) भगवान बुद्ध को वे अपना सुगत देव मानते है।

(२) संसार को दुख का घर मानते हैं और उसके बाद सुख होना मानते है।

(३) जगत् को क्षण भगुर मानते है।

बौद्ध मत वालों का ईश्वर में विश्वास नहीं है। उनके लिये भगवान बुद्ध ही सब कुछ है।

जैनमत

(१) असम्भव बाते—जैनियों के ग्रन्थो ने बहुत सी असम्भव बाते लिखी है। ऋषभदेव का शरीर पॉच सो धनुष लम्बा और चौरासी लाख वर्ष आयु, अजित नाथ का चार सौ पचास धनुष लम्बा शरीर, पार्श्वनाथ का दो सौ धनुष का शरीर, इसी प्रकार से चौबीसों तीर्थंकरो का शरीर बहुत बडा लिखा

कहता ? जो नहीं जानता था, तो वह ईश्वर ही नहीं इसलिये तुम्हारी बाईबिल ईश्वरोक्त और उसमें कहा हुआ ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है।

२—और परमेश्वर ईश्वर ने आदम को बड़ी नींद में डाला और वह सो गया तब उसने उसकी पसलियों में से एक पसली निकाली और उसकी सन्ति मास भर दिया और परमेश्वर ईश्वर ने आदम की उस पसली से एक नारी बनाई और उसे आदम के पास लाया ॥ पर्व २ ॥ आ० २१, २२ ॥

(समीक्षक) जो ईश्वर ने आदम को धूली से बनाया तो उस की स्त्री को धूली से क्यों नहीं बनाया ? और जो नारी को हड्डी से बनाया तो आदम को हड्डी से क्यों नहीं बनाया ? और जैसे नर से निकलने से नारी नाम हुआ तो नारी से नर नाम भी होना चाहिये और उन में परस्पर प्रेम भी रहे जैसे स्त्री के साथ पुरुष प्रेम करे वैसे पुरुष के साथ स्त्री भी प्रेम करे। देखो विद्वान् लोगो ! ईश्वर की कैसी पदार्थ विद्या अर्थात् "फिलासफी" है। जो आदम की एक पसली निकाल कर नारी बनाई तो सब मनुष्यों की एक पसली कम क्यों नहीं होती ? और स्त्री के शरीर में एक पसली होनी चाहिये क्योंकि वह एक पसली से बनी है क्या जिस सामग्री से सब जगत् बनाया उस सामग्री से स्त्री का शरीर नहीं बन सकता था ? इसलिये यह बाईबिल का सृष्टिक्रम सृष्टिविद्या से विरुद्ध है।

३—अब सर्प भूमि के हर एक पशु से जिसे परमेश्वर ईश्वर ने बनाया था धूर्त्त था और उसने स्त्री से कहा क्या निश्चय ईश्वर ने कहा है कि तुम इस बारी के हर एक पेड़ से न खाना, और स्त्री ने सर्प से कहा कि हम तो इस बारी के पेड़ों का फल खाते हैं। परन्तु उस पेड़ का फल जो बारी के बीच में है ईश्वर ने कहा कि तुम उसे न खाना और न छूना। न हो कि मर जाओ। तब सर्प ने स्त्री से कहा कि तुम निश्चय न मरोगे। क्योंकि ईश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उसे खाओगे तुम्हारी आंखें खुल जावेंगी और तुम भले बुरे की पहिचान में ईश्वर के समान हो जाओगे। और जब स्त्री ने

का रूप धारण कर लेती है। यदि जैनी लोग यही मानते है तो उनसे पूछना चाहिये कि यदि तुम जङ्गल में बिना परिश्रम किये रोटी का बनना, कपडे का मिलना बताते हो तो यह भी बिना ईश्वर के बन सकता है। वे मानते है कि जीव ही मुक्तावस्था को प्राप्त होने पर ईश्वर बन जाता है, यदि ऐसा हो जावे तो फिर बहुत से ईश्वर हो जायेंगे, और सृष्टि नियम से नहीं चलेगी।

५—मूर्त्ति पूजा—जैनियों ने ही मूर्त्ति पूजा चलाई है। यह लोग अपने तीर्थंकरों की मूर्तियाँ बनाकर पूजा करते है और अज्ञानियों से रुपया ठगा करते है।

तेरहवां समुल्लास

ईसाई मत

ईसाइयों की धर्म पुस्तक बाइबिल है। हम बाइबिल के उद्धरण और ऋषि दयानन्द की आलोचना सत्यार्थप्रकाश पुस्तक से देते है :—

१—और ईश्वर ने कहा कि उजियाला होवे और उजियाला हो गया। और ईश्वर ने उजियाले को देखा कि अच्छा है॥ पर्व १ आ० ३, ४॥

(समीक्षक) क्या ईश्वर की बात जड़रूप उजियाले ने सुन ली? जो सुनी हो तो इस समय भी सूर्य्य और दीप अग्नि का प्रकाश हमारी तुम्हारी बात क्यों नहीं सुनता? प्रकाश जड़ होता है वह कभी किसी की बात नहीं सुन सकता, क्या जब ईश्वर ने उजियाले को देखा तभी जाना कि उजियाला अच्छा है? पहिले नहीं जानता था। जो जानता होता तो देखकर अच्छा क्यों

ज्ञानदाता और अमर करने वाला था तो उसके फल खाने से क्यों वर्जा और जो वर्जा तो वह ईश्वर झूठा और बहकाने वाला ठहरा। क्योंकि उस वृक्ष के फल मनुष्यों को ज्ञान और सुखकारक थे, अज्ञान और मृत्युकारक नहीं, जब ईश्वर ने फल खाने को वर्जा तो उस वृक्ष की उत्पत्ति किस लिये की थी? जो अपने लिए की तो क्यो आप अज्ञानी और मृत्यु धर्म वाला था? और जो दूसरों के लिये बनाया तो फल खाने में अपराध कुछ भी न हुआ और आजकल कोई भी वृक्ष ज्ञानकारक और मृत्युनिवारक देखने में नहीं आता, क्या ईश्वर ने उसका बीज भी नष्ट कर दिया? ऐसी बातों से मनुष्य छली कपटी होता है तो ईश्वर वैसा, क्यों नहीं हुआ क्योंकि जो कोई दूसरे से छल कपट करेगा वह छली कपटी क्यों न होगा? और जो इन तीनों को शाप दिया वह बिना अपराध से है, पुनः वह ईश्वर अन्यायकारी भी हुआ, और यह शाप ईश्वर को होना चाहिये क्योंकि वह झूठ बोला और इनको बहकाया। यह "फिलासफी" देखो क्या बिना पीडा के गर्भ धारण और बालक का जन्म हो सकता था? और बिना श्रम के कोई अपनी जीविका कर सकता सकता है? क्या प्रथम कांटे आदि के वृक्ष न थे? और जब शाक पात खाना सब मनुष्यों को ईश्वर के कहने से उचित हुआ तो जो उत्तर में मांस खाना बाइबिल में लिखा वह झूठा क्यों नहीं? और जो वह सच्चा हो तो ईसाई लोग सब मनुष्यों को आदम के अपराध से सन्तान होने पर अपराधी क्यों कहते? भला ऐसा पुस्तक और ऐसा ईश्वर कभी बुद्धिमानों के सामने योग्य हो सकता है?

४—जब कोई अध्यक्ष पाप करे। तब वह बकरी का निसखोट नर मेम्ना अपनी भेंट के लिये लावे। और उसे परमेश्वर के आगे बली करे यह पाप की भेंट है॥ तौ० लै० प० ४। आ० २२, २३, २४॥

(समीक्षक) वाहजी! वाह!! यदि ऐसा है तो इनके अध्यक्ष अर्थात् न्यायाधीश तथा सेनापति आदि पाप करने से क्यों डरते होंगे? आप तो यथेष्ट पाप करें और प्रायश्चित्त के बदले में गाय, बछिया, बकरे आदि के

देखा वह पेड़ खाने में सुस्वादु और दृष्टि में सुन्दर और बुद्धि देने के योग्य है तो उसने फल में से लिया और खाया और अपने पति को भी दिया और उसने खाया तब उन दोनों की आँखें खुल गईं और वे जान गये कि हम नंगे हैं। सो उन्होंने अञ्जीर के पत्तों को मिला के सिया और अपने लिये ओढ़ना बनाया तब परमेश्वर ईश्वर ने सर्प्प से कहा कि जो तू ने यह किया है इस कारण तू सारे ढोर और हर एक बन के पशु से अधिक स्रापित होगा। तू अपने पेट के बल चलेगा और अपने जीवन भर धूल खाया करेगा॥ और मैं तुझमें और स्त्री में तेरे वंश और उसके वंश में वैर डालूँगा, वह तेरे शिर को कुचलेगा और तू उसकी एड़ी को काटेगा॥ और उसने स्त्री को कहा कि मैं तेरी पीड़ा और गर्भ धारण को बहुत बढ़ाऊँगा, तू पीड़ा से बालक जनेगी और तेरी इच्छा तेरे पति पर होगी और वह तुझ पर प्रभुता करेगा॥ और उसने आदम से कहा कि तू ने जो अपनी पत्नी का शब्द माना है और जिस पेड़ से मैंने तुझे खाने को वर्जा था तूने खाया है इस कारण भूमि तेरे लिए स्रापित है अपने जीवन भर तू उससे पीड़ा के साथ खायगा॥ और वह कांटे और ऊँटकटारे तेरे लिये उगायेगी और तू खेत का साग पात खायगा॥ तौरेत उत्पत्ति पर्व ३। आ० १.२,३,४,५,६,७,१४,१५,१६,१७,१८॥

(समीक्षक) जो ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो इस धूर्त सर्प्प अर्थात् शैतान को क्यों बनाता? और जो बनाया तो वही ईश्वर अपराध का भागी है क्योंकि जो वह उसको दुष्ट न बनाता तो वह दुष्टता क्यों करता? और वह पूर्व जन्म नहीं मानता तो बिना अपराध उसको पापी क्यों बनाया? और सच पूछो तो वह सर्प नहीं था किन्तु मनुष्य था क्योंकि जो मनुष्य न होता तो मनुष्य की भाषा क्योंकर बोल सकता? और जो आप झूठा और दूसरे को झूठ में चलावे उसको शैतान कहना चाहिये। सो यहाँ शैतान सत्यवादी और इससे उसने उस स्त्री को नहीं बहकाया किन्तु सच कहा और ईश्वर ने आदम और हव्वा से झूठ कहा कि इसके खाने से तुम मर जाओगे। जब वह पेड़

चौदहवाँ समुल्लास

मुसलमानी मत

लगभग १४०० वर्ष हुए अरब देश मे मुहम्मद साहब का जन्म हुआ ॥ इन्होंने मुसल्मानी मत का प्रचार आरम्भ किया। मुसल्मान लोग "कुरान" को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। इस पुस्तक से कुछ उद्धरण तथा स्वामी जी की समालोचना यहा दी जाती है।

१—आरम्भ साथ नाम अल्लाह के क्षमा करनेवाला दयालु ॥ मंजिल १। सिपारा १। सूरत १॥

(समीक्षक) मुसलमान लोग ऐसा कहते हैं कि कुरान खुदा का कहा है परन्तु इस वचन से विदित होता है कि इसका बनाने वाला कोई दूसरा है क्योंकि जो परमेश्वर का बनाया होता तो "आरम्भ साथ नाम अल्लाह के" ऐसा न कहता किन्तु "आरम्भ वास्ते उपदेश मनुष्यों के" ऐसा कहता! यदि मनुष्यों को शिक्षा करता है कि तुम ऐसा कहो तो भी ठीक नहीं, क्योंकि इससे पाप का आरम्भ भी खुदा के नाम से होकर उसका नाम भी दूषित हो जायगा। जो वह क्षमा और दया करने हारा है तो उसने अपनी सृष्टि में मनुष्यों के सुखार्थ अन्य प्राणियों को मार, दारुण पीडा दिलाकर, मरवा के मांस खाने की आज्ञा क्यों दी? क्या वे प्राणी अनपराधी और परमेश्वर के बनाये हुये नहीं हैं? और यह भी कहना था कि 'परमेश्वर के नाम पर अच्छी बातों का आरम्भ' बुरी बातों का नहीं इस कथन मे गोलमाल है, क्या चोरी, जारी, मिथ्याभाषणादि अधर्म का भी आरम्भ परमेश्वर के नाम पर किया जाय? इसीसे देख लो कसाई आदि मुसलमान, गाय आदि के गले काटने

प्राण लेवे तभी तो ईसाई लोग किसी पशु वा पक्षी के प्राण लेने में शङ्कित नहीं होते। सुनो ईसाई लोगो! अब तो इस जङ्गली मत को छोड़ के सुसभ्य धर्ममत वेदमत को स्वीकार करो कि जिससे तुम्हारा कल्याण हो ॥ ५१ ॥

५—तब यीशु ने उनसे कहा तुम्हारे पास कितनी रोटियाँ हैं। उन्होंने कहा सात और छोटी मछलियाँ। तब उसने लोगों को भूमि पर बैठने की आज्ञा दी, तब उसने उन सात रोटियों को और मछलियों को धन्य मान के तोड़ा और अपने शिष्यों को दिया और शिष्यों ने लोगों को दिया सो सब खाके तृप्त हुए और जो टुकड़े बच रहे उनके सात टोकरे भरे उठाये। जिन्होंने खाया सो स्त्रियों और बालकों को छोड़ चार सहस्र पुरुष थे॥ इ० म० प० २५। आ० ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९ ॥

(समीक्षक) अब देखिये! क्या यह आजकल के झूठे सिद्धों और इन्द्रजाली आदि के समान छल की बात नहीं है? उन रोटियों में अन्य रोटियाँ कहाँ से आ गईं? यदि ईसा में ऐसी सिद्धियाँ होतीं तो आप भूखा हुआ गूलर के फल खाने को क्यों भटका करता था, अपने लिये मिट्टी पानी और पत्थर आदि से मोहनभोग रोटियाँ क्यों न बना लीं? ये सब बातें लड़कों के खेल पन की हैं जैसे कितने ही साधु वैरागी ऐसी छल की बातें करते भोले मनुष्यों को ठगते हैं वैसे ही ये भी हैं ॥८॥

६—और कोई अपवित्र वस्तु अथवा घिनित कर्म करने हारा अथवा झूठ पर चलने हारा उसमें किसी रीति से प्रवेश न करेगा॥ यो० प्र० प० २०। आ० २७ ॥

(समीक्षक) जो ऐसी बात है तो ईसाई लोग क्यों कहते हैं कि पापी लोग भी स्वर्ग में ईसाई होने से जा सकते हैं? यह ठीक बात नहीं है तो योहन्ना स्वप्न की मिथ्या बातों का करनेहारा स्वर्ग में प्रवेश कभी न कर सका होगा और ईसा भी स्वर्ग में न गया होगा क्योंकि जब अकेला पापी स्वर्ग को प्राप्त नहीं हो सकता तो जो अनेक पापियों के पाप के भार से युक्त है वह क्योंकर स्वर्गवासी हो सकता है? ॥ १२८ ॥

और इतना विशेष कि है यहाँ जैसे पुरुष जन्मते मरते और आते जाते हैं उसी प्रकार स्वर्ग में नहीं किन्तु यहाँ की स्त्रियाँ सदा नहीं रहती और वहाँ बीबियाँ अर्थात् उत्तम स्त्रियाँ सदा काल रहती हैं तो जब तक कयामत की रात न आवेगी तब तब उन विचारियों के दिन कैसे कटते होंगे ? वह मुसलमानों का स्वर्ग गोकुलिये गुसाइयों के गोलोक और मन्दिर के सदृश दीखता है क्योंकि वहाँ स्त्रियों का मान्य बहुत, पुरुषों का नहीं, वैसे ही खुदा के घर में स्त्रियों का मान्य अधिक और उन पर खुदा का प्रेम भी बहुत है उन पुरुषों पर नहीं, क्योंकि बीबियों को खुदा ने बहिश्त में सदा रक्खा और पुरुषों को नहीं, वे बीबियाँ बिना खुदा की मर्जी स्वर्ग में कैसे ठहर सकतीं ? जो यह बात ऐसी ही हो तो खुदा स्त्रियों में फँस जाय ! ॥ ६ ॥

५—जब मूसा ने अपनी कौम के लिये पानी माँगा हमने कहा कि अपना असा (दंड) पत्थर पर मार उसमें से बारह चश्मे बह निकले ॥ म० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ५६ ॥

(समीक्षक) अब देखिये इन असम्भव बातों के तुल्य दूसरा कोई कहेगा ? एक पत्थर की शिला में डंडा मारने से बारह झरनों का निकलना सर्वथा असम्भव है, हाँ उस पत्थर को भीतर से पोला कर उसमें पानी भर बारह छिद्र करने से सम्भव है अन्यथा नहीं ॥ २३ ॥

६—और अल्लाह खास करता है जिसको चाहता है साथ दया अपनी के ॥ म० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ६७ ॥

(समीक्षक) क्या जो मुख्य और दया करने के योग्य न हो उसको भी प्रधान बनाता और उस पर दया करता है ? जो ऐसा है तो खुदा बड़ा गड़-बड़िया है क्योंकि फिर अच्छा काम कौन करेगा ? और बुरे कर्म कौन छोड़ेगा ? क्योंकि खुदा की प्रसन्नता पर निर्भर करते हैं कर्मफल पर नहीं, इससे सब को अनास्था होकर कर्मोच्छेद प्रसङ्ग होगा ॥ २४ ॥

मे भी "बिसमिल्लाह" इस वचन को पढते है जो यही,इसका पूर्वोक्त अर्थ है तो बुराइयों का आरम्भ भी परमेश्वर के नाम पर मुसलमान करते हैं। और मुसलमानो का "ख़ुदा" दयालु भी न रहेगा क्योंकि उसकी दया उन पशुओं पर न रही ! और जो मुसलमान लोग इसका अर्थ नहीं जानते तो इस वचन का प्रकट होना व्यर्थ है यदि मुसलमान लोग इसका अर्थ और करते है तो सूधा अर्थ क्या है ? इत्यादि ॥ १ ॥

२—उनके दिलो मे रोग है अल्लाह ने उसका रोग बढा दिया ॥ म० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ६ ॥

(समीक्षक) भला विना अपराध खुदा ने उनका रोग बढाया दया न आई, उन बिचारो को बडा दुख हुआ होगा ! किसी के मन पर मोहर लगाना, किसी का रोग बढाना खुदा का काम नहीं हो सकता, क्योंकि रोग का बढाना अपने पापों से है ॥ ६ ॥

३—जिसने तुम्हारे वास्ते पृथ्वी बिछोना और आसमान की छत को बनाया ॥ म० १ । सि० १ । सू० २ । आ० २१ ॥

(समीक्षक) भला आसमान छत किसी की हो सकती है ? यह अविद्या की बात है । आकाश का छत के समान मानना हँसी की बात है यदि किसी प्रकार की पृथ्वी को आसमान मानते हो तो उनके घर की बात है ॥ ७ ॥

४—और आनन्द का सन्देशा दे उन लोगो को कि ईमान लाए और काम किए अच्छे यह कि उनके वास्ते बिहिश्ते हैं जिनके नीचे से चलती है नहरे जब उनमे से मेवो के भोजन दिये जावेगे तब कहेंगे कि यह वो वस्तु है जो हम पहिले इससे दिये गये थे और उनके लिये पवित्र बीबियाँ सदैव वहाँ रहने वाली है ॥ म० १ । सि० १ । सू० २ । आ० २४ ॥

(समीक्षक) भला यह क़ुरान का बहिश्त ससार से कौनसी उत्तम बात वाला है ? क्योकि जो पदार्थ ससार में है वे ही मुसलमानों के स्वर्ग में है

पश्चिम की समीप हैं तेल उसका रोशन हो जावे जो न लेगे ऊपर रोशनी के मार्ग दिखाता है अल्लाह नूर अपने के जिसको चाहता है ॥ म० ४ । सि० १८ । सू० २४ । आ० ३३, ३४ ॥

(समीक्षक) हाथ पग आदि जड़ होने से गवाही कभी नहीं दे सकते यह बात सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से मिथ्या है क्या खुदा आग बिजुली है ? जैसा कि दृष्टान्त देते है ऐसा दृष्टान्त ईश्वर मे नही घट सकता हाँ किसी साकार वस्तु मे घट सकता है ॥ ११४ ॥

७—ऐसा न हो कि काफिर लोग ईर्ष्या करके तुमको ईमान से फेर देवें क्योंकि उनमें से ईमानवालों के बहुत से दोस्त हैं ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० १०१ ॥

(समीक्षक) अब देखिये खुदा ही उनको चिताता है कि तुम्हारे ईमान को काफिर लोग न डिगा देवें क्या वह सर्वज्ञ नहीं है ? ऐसी बातें खुदा की नहीं हो सकती हैं ॥ २५ ॥

८—जिसको चाहता है क्षमा करता है जिसको चाहे दुःख देता है जो कुछ किसी को भी न दिया वह तुम्हें दिया ॥ मं २ । सि० ६ । सू० ५ । आ० १६, १८ ॥

(समीक्षक) जैसे शैतान जिसको चाहता पापी बनाता वैसे ही मुसलमानों का खुदा भी शैतान का काम करता है । जो ऐसा है तो फिर बहिश्त और दोजख में खुदा जावे क्योंकि वह पाप पुण्य करने वाला हुआ, जीव पराधीन है जैसी सेना सेनापति के आधीन किसी की रक्षा करती है और किसी को मारती है उसकी भलाई बुराई सेनापति को होती है सेना पर नहीं ॥ ६५ ॥

९—और किये हमने बीच पृथिवी के पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे ॥ मं० ४ । सि० १७ । सू० २१ । आ० ३० ॥

(समीक्षक) यदि कुरान का बनाने वाला पृथिवी का घूमना आदि जानता तो यह बात कभी नहीं कहता कि पहाड़ों के धरने से पृथिवी नहीं हिलती, शङ्का हुई कि जो पहाड़ नहीं धरता तो हिल जाती. इतने कहने पर भी भूकम्प में क्यों डिग जाती, है ॥ ११० ॥

१०—उस दिन की गवाही देवेंगे ऊपर उनके जबान उनकी और हाथ उनके और पांव उनके साथ उस वस्तु के कि थे करते । अल्लाह नूर है आसमानों का और पृथिवी का नूर उसके कि मानिन्द ताक की है बीच उसके दीप हो और बीच कंदील शीशों के है वह कंदील मानो कि तारा है चमकता रोशन किया जाता है दीपक वृक्ष मुबारिक जैतून के से न पूर्व की ओर है न

पश्चिम की समीप है वल उसका रोशन हो जावे जो न लेगे ऊपर रोशनी के मार्ग दिखाता है अल्लाह नूर अपने के जिसको चाहता है ॥ म० ४ । सि० १८ । सू० २४ । आ० २३, ३४ ॥

(समीक्षक) हाथ पग आदि जड़ होने से गवाही कभी नहीं दे सकते यह बात सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से मिथ्या है क्या खुदा आग बिजुली है ? जैसा कि दृष्टान्त देते हैं ऐसा दृष्टान्त ईश्वर में नहीं घट सकता हाँ किसी साकार वस्तु में घट सकता है ॥ ११४ ॥

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस प्रयाग ।